~|| अंतरा-शब्दशक्ति ||~

मासिक वेब पत्रिका

नवंबर 2017 अंक 5

www.antrashabdshakti.com

।।~अंतरा-शब्दशक्ति~।।

संस्थापक एवं संपादक

प्रीति समकित सुराना

सह संस्थापक एवं मार्गदर्शक

मनोज जैन 'मधुर'

समकित सुराना

तकनीकी संपादक एवं सलाहकार

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'

सलाहकार समिति

कैलाश बिहारी सिंघल

ब्रजेश शर्मा 'विफल'

देवेंद्र सोनी

कीर्ति वर्मा

पिंकी परुथी 'अनामिका'

वेबसाइट

www.antrashabdshakti.com

ईमेल

antrashabdshakti@gmail.com

फेसबुक पेज

https://www.facebook.com/www.antrashabdshakti/

फेसबुक समूह

https://www.facebook.com/groups/989086901140447/

अनुक्रमणिका

संपादकीय

प्रीति समकित सुराना 5-7

पाठकीय समीक्षा

देवेंन्द्र सोनी 8-9

ब्रजेश शर्मा विफल 10-11

गीत- नवगीत

गोकुल सोनी 12

दीपिका ऋषि झा 13

प्रदीप सोनी 'शून्य' 14

लक्ष्मी खन्ना ' सुमन' 15

मोहन पुरी 16

रंजना गुप्ता 17

हाइकु

मीनाक्षी पारीक 18

पिंकी परुथी "अनामिका 19

ग़ज़ल

हेमंत बोर्डिया 20

कवि राजेश पुरोहित 21

मणि बेन द्विवेदी 22

जयकृष्ण चांडक 'जय' 23

मुक्तक

शिरीन भावसार 24

रागिनी शर्मा 25

कविता

नीरा जैन 26

कविता नागर 27

अनिता मंदिलवार "सपना" 28

मंगला रस्तोगी 29

विनीता चैल 30

उपासना पांडेय 'आकांक्षा' 31

सुरेखा 'स्वरा' 32

अरुण खरे 33

दोहे

मनोज जैन 'मधुर' 34

भावना तिवारी, कानपुर 35

कहानी

मनमोहन भाटिया 36-39

नीरजा मेहता 40-42

अनुवाद

विनोद जैन 43-44

लघुकथा

पूनम झा 45

अनिल नागर 46

कल्पना मिश्रा 47

कमल मेहरोत्रा 48

आलेख

अर्पण जैन 'अविचल' 49-55

संस्मरण

राधा गोयल 56-58

साक्षात्कार

प्रीति 'अज्ञात

(संस्थापक एवं संपादक- हस्ताक्षर, ब्लागर एवं समाजसेवी)

साक्षात्कारकर्ता :- प्रीति सुराना 59-66

पुस्तक समीक्षा

मुकेश दुबे, सीहोर 67-69

संपादकीय

'अकेलापन कमज़ोरी नहीं है,..'

प्रीति समकित सुराना

आज हर तरफ मायूसी, कोफ़्त, गुस्सा, नफरत,..शायद ही हो जिसे किसी से कोई शिकायत न हो,....। किसी को हाल से शिकवा किसी को हालात से , किसी को ख़ामोशी परेशान करती है तो कोई चीख चिल्लाहट से तंग आ गया , कोई सरकार को कोसता है कोई परिवार को, कोई सपने नहीं देख पाता किसी को कोई टूटे सपने चुभते हैं ,.. कोई किसी के साथ से दुखी है तो कोई अपने अकेलेपन से,.। अपवाद हर जगह पाए जाते हैं,..और न भी हो तो किसी की बात को गलत साबित करने के लिए बन जाते हैं ।

जैसे मैं कहूंगी कि दुनिया में कोई सुखी नहीं है तो मेरी बात को विरोध होगा..और लोग कहेंगे हम सुखी हैं,.. और मैं कहूंगी सब सुखी हैं तब तो ज्यादा विरोध होगा क्योंकि कुछ लोगों की आदत होती है हमेशा 'विपक्ष' में बैठने की । खैर हम अपवादों की बात क्यों करें अपवाद तो आखिर अपवाद ही होते हैं और वैसे भी आज के जमाने में हर किसी की 'अपनी अपनी ढफली अपना अपना राग' ।

फ़िलहाल मेरा राग सुनिए ,..मैं मानती हूं की दुनिया में सभी असंतुष्ट हैं । सभी को अपनी स्थिति और परिस्थिति से कोई न कोई शिकायत है,..हर व्यक्ति दूसरे की जिंदगी से खुद की तुलना करके दुखी होता है क्योंकि पुरानी कहावत है 'दूसरे की थाली में घी ज्यादा दिखता है' । वैसे भी कहा जाता है इंसान अपने दुःख से कम और दूसरों के सुख से ज्यादा दुखी होता है ।

खैर छोड़िये!! मैं बात करना चाहती हूं अकेलेपन नामक गंभीर बीमारी की । मुझे और मेरे आसपास के लोगों को अकेलेपन की बहुत शिकायत है । घर के काम की बात हो तो गृहणी को लगता है मैं अकेली क्या क्या करुं? धनोपार्जन की बात हो पुरुष को लगता है कि मैं अकेला कितना कमाऊं । दोनों मिलकर काम करते हैं तो संबंधों में

दूरियां आती है । तथाकथित अपने आए दिन याद दिलाते रहते हैं कि दुनिया में "अकेले आए हो और अकेले ही जाओगे" ।

हम हर वक्त अकेलेपन की शिकायत से क्यों घिरे रहते हैं,.. आज का परिवेश ही ऐसा हो चला है कि दाएं हाथ को बाएं हाथ पर भी भरोसा करने से डर लगता है। इस ज़माने में रिश्तों से अपेक्षाएं दूरियों को बढ़ाती है और जब अपनों से दूरी बढ़ती है तो अकेलापन हावी होने लगता है । जब हम सबके साथ होते हैं तो अपनापन भी दखलंदाज़ी लगता है और जब जरुरत हो और लोग हाथ खींच ले तो अकेलापन महसूस होता है ।

पर कभी सोचा है कि अकेलापन हमारी कमजोरी और निराशा बनता जा रहा है,.. खुद को अकेला मानकर हम अपनी क्षमताओं को ख़त्म करते जाते हैं,.. अपेक्षाएं जब उपेक्षों में बदलती है तो हम खुद भी खुद की उपेक्षा करने लगते हैं,.. जबकि जब हम अकेले होते हैं तब हमें निराश होने की बजाय ऊर्जा का संचय करना चाहिए । वो ऊर्जा जो बोलने में सुनने में दुखी होने में उपेक्षित होने में खर्च करते आ रहे हैं उसे एक मनचाही दिशा देकर पूरी ऊर्जा सोचने समझने और करने में लगानी चाहिए । और फिर कौन कहता है कि 'अकेला चना भाड़ नही फोड़ सकता' ।

याद करो वो दिन जब मां ने जन्म देकर अपनी कोख से बाहर जीना सिखाया,.. हाथ से कौर खिलाते-खिलाते हाथ से निवाला खाना सिखाया ,.. पिता ने चलना सिखाते-सिखाते उंगली छोड़कर अकेले चलना सिखाया । अक्षर से वाक्य पढ़ाते पढ़ाते जिंदगी आत्मनिर्भता से जीने का पाठ पढ़ाया । सायकिल चलाना सिखाते हुए पिता ने धीरे से पीछे अकेला छोड़ दिया ताकि अकेले सायकिल से बाइक और बाइक से कार तक का सफ़र अकेले कर सको । स्वतंत्र होकर अपनी जीविका चलाने के लिए सलामत हाथ पैर और तालीम दी ।

और आज जब स्वतंत्र हो तो अकेलेपन का रोना क्यूं ? अकेलापन कमजोरी नहीं अगर सोच सकारात्मक हो । हो सकता है आज किसी ने हाथ और साथ छोड़ा है तो उसके पीछे वजह ये हो की अब रास्ता बदलने का समय आ गया हो । हो सकता है अगला मोड़ अकेले के लिए ही सफलता के आयाम लेकर आ रहा हो ।

आज मैंने तय कर लिया है इस अकेलेपन में जीवन को नया रुप दूंगी अपनी मर्जी से, अपनी ख़ुशी के लिए, अपनी पसंद से अपनी सोच का एक ऐसा प्रारुप तैयार करुंगी और फिर अपनी पूरी संचित ऊर्जा लगाकर उसे जीवंत करुंगी बिलकुल वैसे जैसे मैंने चाहा है और तब साबित कर दूंगी की मेरा अकेलापन मेरी कमजोरी नहीं बल्कि ताकत है ।

एक गुजारिश,..एक बार आप भी आजमाकर देखो ना,... सुकून मिलेगा जब,...

कोई रोकेगा नहीं कोई टोकेगा नहीं
वो करो दिल चाहे जो,.
जैसा सोचा था जितना सोचा था
वो कर के दिखा दो,.
मौका मिला है किस्मत वाले हो
कर सकते हो मन की,.
अकेलापन कमजोरी नहीं ताकत है
आज ये साबित कर दो,..।,

प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी

पाठकीय समीक्षा

- देवेंन्द्र सोनी

समीक्षा -वेब पत्रिका अंतरा का दीपावली अंक ।

1 अक्टूबर को अपने समय पर प्रकाशित नियमित मासिक साहित्यिक वेब पत्रिका - अंतरा का दीपावली अंक अभी सरसरी तौर पर तुरन्त ही पढ़ा । आकर्षक आवरण के साथ लाजवाब और पठनीय साहित्य को समाहित / समर्पित अंक ,सम्पादक प्रीति सुराना के अकथ परिश्रम का संग्रहणीय दस्तावेज है । अपनी अनुकरणीय सम्पादकीय में प्रीति जी ने - " संस्कारों में इंसानियत की शिक्षा देने की जो बात उठाई है , मैं उसका पक्षधर हूँ ।

अंक में - कांता राय जी ने सितंबर अंक पर सम्यक और सटीक प्रकाश डाला है। मनोज " मधुर " , कल्पना मनोरमा , जगदीश पंकज , बृजनाथ श्रीवास्तव , ब्रजेश शर्मा " विफल ", शब्द मसीहा के गीत / नवगीत विविधता लिए हुए हैं जो नई दिशा देते हैं । संजीव " सलिल ", राजेंद्र अनेकांत के दोहों ने प्रभावित किया।

संजय वर्मा, जयंति जैन, आर्विना गहलोत , जितेश गौतम , निरुपमा सिन्हा, शिरीन भावसार , संजय कुमार, सुरेखा अग्रवाल, अदिति रूसिया, मुकेश कुमार, रजनी कोठारी, विनोद तिवारी की कविताओं और कैलाश बिहारी, भारती वर्मा के हायकू बताते हैं कि निरन्तर लेखन से सभी विधाओं में पारंगत हुआ जा सकता है।

सुरेंद्र श्लेष, उर्मिला माधव, कृष्ण बक्षी, अनीता सिंह की गजलें प्रभावी हैं। अंक में कुमार गौरव और राजेंद्र श्रीवास्तव के बाल गीतों ने मन मोह लिया । बाल साहित्य को प्राथमिकता मिलना भी चाहिए। मुकेश दुबे, गोकुल सोनी और पिंकी परूथी की कहानियां समाज का आईना लगीं । कविता वर्मा, प्रदीप अरोरा, संजीव आहूजा, सीमा शिवहरे की लघुकथाएं जीवन की सच्चाई प्रकट करती हैं । विनोद जैन का - अनुयायी और मित्रों के विषय में अनुवाद जरूर पढ़ा जाना चाहिए।

"" इस अंक का सबसे महत्वपूर्ण आकर्षण/आलेख - आशुतोष राणा जी का है। मेरा आग्रह है इसे जरूर पढ़ें यदि अपने लेखन को परिमार्जित करते रहना है तो मेरा सुझाव है हर अंक में आशुतोष राणा जी का लेख शामिल किया जाना चाहिए और जो मित्र फेसबुक पर हैं , उन्हें आशुतोष जी को फॉलो भी करना चाहिए। "

कांता राय जी ने - समंदर प्राण अकुलाया की समीक्षा करते हुए सही लिखा है - ऐसी कृतियाँ अलख जगाने का कार्य करती हैं । डॉ. प्रतिभा राठौड़ की कविताओं पर केंद्रित अंक -शब्द ध्वज की मेरी समीक्षा तो आप ही बताएं - कैसी लगी ।

साक्षात्कार में वसुंधरा जी ने रीना पारीक जी से जो संवाद किया है वह प्रेरित करता है। यात्रा संस्मरण में कीर्ति वर्मा ने अपनी अंडमान यात्रा का जो वर्णन किया है, वह् ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का जीवंत चित्रण है।

कुल मिलाकर - बाजारवाद या आर्थिक लाभ की परवाह किए बिना विशुद्ध साहित्य का सभी विधाओं में समावेश और प्रकाशन , लेखकों और पाठकों के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है । ऐसे प्रयास न केवल सराहनीय अपितु प्रेरक भी होते हैं । शामिल रचनाकारों का भी यह दायित्व बनता है कि वे केवल अपनी रचनाओं को ही न देखें बल्कि सभी प्रकाशित रचनाएँ भी पढ़ें और उन पर अपनी राय व्यक्त करें। इसे आवश्यक तौर पर समझें । यह भी जान लें - कि किसी भी प्रकाशन को हम जरा से समय में ही पढ़ लेते हैं किंतु इसे हम तक पहुंचाने में सम्पादक और सहयोगियों का अथक परिश्रम लगता है। जिसके लिए मैं पुनः सम्पादक प्रीति जी , मनोज जी , ब्रजेश जी और अन्यान्य सहयोगियों का आभार व्यक्त करता हूँ तथा अपेक्षा व्यक्त करता हूँ कि हम सबके सतत सहयोग से "अंतरा " आने वाले समय में प्रिंट रूप में भी उपलब्ध होगी।

अंत में एक बात और अंतरा की पी डी एफ फाइल सशुल्क हो । बाजार में एक पी डी एफ पुस्तक पचास रुपये के शुक्ल देकर बनती है।

- देवेंन्द्र सोनी , इटारसी।

पाठकीय समीक्षा

ब्रजेश शर्मा विफल

वआआह् खूबसूरत मुखपृष्ठ,..शानदार सम्पादकीय
'अति सर्वत्र वर्जयेत' का सन्देश पढ़ते मन में विचार आता है,..प्रीति जी का श्रम का माद्दा इसी श्रेणी का तो है ।।
कांता राय जी का सितम्बर अंक पर सांगोपांग दृष्टिपात,
एक नज़र में सम्पूर्ण अंक ज़ेहन में उभार देता है ।
प्रीति जी ने एक से एक शानदार खण्ड और सृजक सजाये हैं और उनके बड़प्पन और स्नेह का मैं बेहद ऋणी हूँ मनोज जी और मैं परिदृश्य में कहीं नही हैं किसी भी विभाग में ,कोई मानसिक श्रम नही,कोई आर्थिक योगदान नहीं फिर भी क्रेडिट देना प्रीति जी की खूबी है ।जो उन्हें नमन योग्य बनाता है ।आप में से जो लोग उनकी जिजीविषा से परिचित हैं, उनकी लगन से परिचित हैं। भली भाँति मेरी बात का समर्थन करेगें । उनके स्वास्थ्य लाभ की सतत कामना । कुछ मित्रों को मेरी बात ठुकुर सुहाती प्रतीत हो सकती है मग़र सच यही है । एक भाई तो मुझे प्रीति जी का चमचा और मनोज जी का पिछलग्गू कहकर रुष्ट भी हो गये, मग़र मेरे फ़लसफ़े थोड़े भिन्न से हैं ।
पिंकी जी की अनमोल रचना बच्चों की परवरिश का आवश्यक अंग हो ये आप सभी से गुज़ारिश है ।।
संजीव आहूजा जी की विष वास खूबसूरती से गढ़ी गयी लघुकथा है ।।
और जुगनी अंतर्मन की परतों से निकली,एक सलिला सी है जो तमाम विषाद बहा ले जाती है ।।
कीर्ति जी ने नयनाभिराम दृश्यों के साथ पोर्टब्लेयर और सेल्युलर के भयावह षडयंत्रो और अमानवीय व्यवहारों का जो चित्र प्रस्तुत किया वे **बधाई** की पात्र हैं ।
रीना पारीक जी का साक्षात्कार सिद्ध करता है कि चल पड़ो तो मक़ाम हासिल होते ही हैं।
भाई देवेन्द्र जी समीक्षा कर्म में निष्णात् हैं इसमें कोई शक़ नही ।शब्दध्वज की समीक्षा मेरी बातों की ताईद करेगी ।

कांता राय जी द्वारा की गयी (गहन अनुभूति की तरह जी गयी) समन्दर प्राण अकुलाया:-समीक्षा अंक की विशेष उपलब्धि है ,
जो मूल पुस्तक तक पहुँचने की तीव्र ललक जगाती है ।
गीत नवगीत खूबसूरती से सजाया खण्ड है ।।
जहाँ अंतरा शब्द शक्ति के दोनों अडमिंस को भी स्थान मिला है ।।
मेरे प्रिय गीत कार मनोज जी के गीत अन्तस् उद्वेलित करते हैं ।।
जगदीश पंकज,शब्द मसीहा, ब्रजनाथ श्रीवास्तव,
कल्पना मनोरमा जी गीत /नवगीत आश्वस्त और आकृष्ट करते हैं ।
संजीव सलिल और राजेन्द्र अनेकांत जी अपने दोहों में व्यापक जमीन घेरते हैं। प्रिय विनोद जी के मुक्तक वाकई में सन्देश छोड़ते हैं ।।
संस्मरण, कथा, कहानियाँ ,हायकु,ग़ज़लें
लघुकथा,दोहे,गीत, नवगीत संस्मरण,समीक्षा, बालगीत,
अनुवाद आशय ये कि छोटे कलेवर में बखूबी सब समेटा गया है ।
और अंत में आशुतोष राणा जी का आलेख नितान्त पठनीय और संग्रहणीय है। जो एक सिनेमाई कलाकार से इतर घोर बुद्धिजीवी की 100 टका साँच बात है । जिसका बारम्बार पठन परिमार्जन करेगा ।।
पुनः बधाईयां और **शुभकामनाएँ** ।। एक खूबसूरत अंक के लिये ।
और सभी मित्रों से निवेदन कि अपनी स्तरीय रचनाएँ इ मेल के माध्यम से सम्प्रेषित करें ।अनुकूल पाये जाने पर आप भी अंतरा शब्द शक्ति अन्तर्जालिक पत्रिका का अंग होंगे।
शुभम् अस्तु नमन
ब्रजेश शर्मा विफल
झाँसी

गीत- नवगीत

राष्ट्र-चेतना

गोकुल सोनी

जगाओ राष्ट्र-चेतना प्रखर
उठें ज्यों 'सिन्धु-ज्वार' की लहर
अनंत कंठ गा उठें वो स्वर
स्वतंत्रता अमर रहे, 'अमर'
छुपे जो देश में बने हैं 'ख़ास'
अनेक 'शत्रु' कर रहे प्रयास
झुका ना पाए देश का वो 'भाल'
प्रचंड 'सैन्य-बल' बना है 'काल'
उठो, सुनो, ये वक़्त की पुकार
उजड़ ना पाए देश की बहार
हृदय भरो अखण्ड देश-भक्ति
उठो युवा, उठो हे नारी शक्ति
उठो अधेड़, वृद्‌ध, और बाल
'उरों' से काट दो तिमिर का जाल
फड़क उठें भुजायें जो 'अनंत'
समझ ले शत्रु आ गया है 'अंत'
गगन गुंजा दें, एकता के स्वर
जगाओ 'राष्ट्र-चेतना' प्रखर
जय हिन्द.....जय भारत.****

गोकुल सोनी

गीत- नवगीत

दीपिका ऋषि झा

क्यूं घर ये छोड़ बैठा है यहाँ परिवार बसता है
मेरे बच्चे तुझी से तो मेरा संसार हंसता है

वो बचपन जब मुझे तेरा हर इक पल याद आता है
हंसी हो जाती गुम आंसू नयन मेरा भीगाता है
चले आ इक दफा घर में मेरे पसरी नीरसता है
मेरे बच्चे तुझी से तो मेरा संसार हंसता है

हमारे देश की रोटी तुझे हरपल बुलाती है
परोसूं जब भी मैं थाली तो तेरी याद आती है
निवाला इक खिलाने को मेरा ये मन तरसता है
मेरे बच्चे तुझी से तो मेरा संसार हंसता है

दवाई भी मिटा पाती नहीं अब मर्ज है मेरा
जलानी बस चिता मेरी लगे अब फर्ज है तेरा
जन्म भर का भूला बैठा क्यूं हमसे तू ये रिश्ता है
मेरे बच्चे तुझी से तो मेरा संसार हंसता है

दीपिका ऋषि झा

गीत- नवगीत

प्रदीप सोनी 'शून्य'

मैं अभिशापित नदी सा
तपी रेत में डूब रहा हूँ ।

उपहास किया तटों का मैंने
प्रबल प्रवाह पर अभिमान ।
मीठेपन पर इतराया मैं
बहा दिया भूमि का सम्मान ।
मैं अपना अस्तित्व समेटे
जल बूँदों को ढूंढ़ रहा हूँ
मैं अभिशापित नदी सा
तपी रेत में डूब रहा हूँ ।

राह रोक कर पगडण्डी की
मरुथल हो गया कण कण
भूल गया था मैं जल जल में
छोटी नदियों का समर्पण
धरती आसमान के रिश्तों से
धीरे धीरे अब छूट रहा हूँ।
मैं अभिशापित नदी सा
तपी रेत में डूब रहा हूँ ।

डुबा दिए नन्हें कोमल सपने
मझधारों का साथ दिया ।
पतवारों को भी छला खूब
संकल्पों को बर्बाद किया।
अभिमान स्वार्थ क्रोध भाव से
भरा घड़ा हूँ , फूट रहा हूँ ।
मैं अभिशापित नदी सा
तपी रेत में डूब रहा हूँ ।

प्रदीप सोनी 'शून्य'

गीत- नवगीत

लक्ष्मी खन्ना ' सुमन'

नगाड़ा

ग्राम नगर फिर बजा नगाड़ा
फिर लाभों का उत्सव आया
फिर यथार्थ को भूल परिंदे
सपनों का करते **अभिनंदन**
फिर दे जाते निर्जल बादल
घिसने को आश्वासन चंदन
फिर गहराते वे खाई को
फिर दीवारों के उठवाया
फिर मुस्कानों का मौसम है
फिर वाणी में मिश्री घुलती
फिर जुड़ते हाथों के साबुन
से थोड़ी मक्कारी खिलती
फिर भूले बिसरे वादों से
कहीं मुखौटा भी शरमाया
फिर सत्ता की ललक नचाती
फिर ताक़त मतवाला करती
फिर अवसर की कच्ची डोरी
इक गठबंधन में है कसती
फिर विवेक बैठा भौचक्का
फिर प्रकाश सच का सकुचाया

लक्ष्मी खन्ना ' सुमन'

गीत- नवगीत

मोहन पुरी

कलुष मन का बह गया सब
गीत गा-गा प्रीत का !
हो उठी झंकृत दिशाएँ,
मेघ का संदेश पाकर !
हो गई सौंधी हवाएँ,
नीर का आदेश गाकर !!
पढ़ सुनाया गाँव ने फिर,
खत पुराने मीत का !
कलुष मन का बह गया सब,
गीत गा-गा प्रीत का !!
झोलियों में आग भर-भर,
माँजते थे देह को हम !
आँखों तले आँखें रमा,
आँजते थे नेह को हम !!
धूप ने मेला लगाया,
बाग में हर गीत का !
कलुष मन का बह गया सब,
गीत गा-गा प्रीत का !!
पर्वतों से जा नदी ने,
बाँह थामी सागरों की !
पनघटों फैली उदासी,
प्यास ढो-ढो गागरों की !!
दे रहा आभास मौसम,
फिर सुनहरी शीत का !
कलुष मन का बह गया सब,
गीत गा-गा प्रीत का !!

मोहन पुरी

गीत- नवगीत

रंजना गुप्ता

कंदील

तन्द्रिल तन्द्रिल
स्वप्निल स्वप्निल
कंदीलों की
झिल मिल ...

मुँडेरों पर दीवारों पर
छज्जों के
ग़झिन किनारों पर ...
कुछ देहरी और
दीवारों पर ..
कुछ मंदिर और मीनारों पर....

है समर तमस का दिए से
उर्मिल उर्मिल
वर्तुल वर्तुल......

कुछ पंक्तिबद्ध से उजियारे
जिनसे नभ के
तारे हारे..

इस दीप सिपाही
के आगे
थक गये रात के बंज़ारे...

फ़िर शुभ का
स्वस्ति सिंधु उजला...
फेनिल फेनिल
उज्जवल उज्जवल...

गढ़ लेती है परिभाषाएँ
पढ़ लेती मन
की भाषायें ...
उन्मीलित दीप शिखा
जल जल ..
क़ीलित करती हर बाधाएँ...

दीपो भव
'अप्प भवो दीपो'
हर पल हर पल
निर्मल निर्मल...,

रंजना गुप्ता

हाइकु-आरजू

मीनाक्षी पारीक

मेरी आरजू
यू मिली मुस्कुराती
हंसती गाती।।

स्नेह लुटाती
खुशियो से भरती
दामन मेरा ।

स्नेह तुम्हारा
करता आलिंगन
मेरी रूह से।

हो तुम प्रिय
मेरा ख्वाब सलौना
मेरी आरजू ।

तुझे निहारूँ
अरमान सवांरूँ
सदके जाऊँ।

मासूम ख्वाब
सजते सिमटते
पलको तले ।

पलके मेरी
तेरे ख्वाब संजोती
नेह पिरोती।

आरजू मेरी
बन कर ख्वाहिशें
मचल रही।

तेरी आरजू
मिलने की जुस्तजू
आजाओ प्रिय।

कमी है तेरी
तु जरूरत मेरी
पूरी कर दो ।।

मीनाक्षी पारीक
जयपुर (राज)

हाइकु-सर्दी

पिंकी परुथी "अनामिका

लो आ गई मैं
बाहर निकलेंगे
थे जो अंदर।

बंद पड़े थे
नौ महीने भीतर
धूप लगाओ।

शाल, स्वेटर
कंबल व रजाई
मफलर भी

टोपी रंगीन
जुराबें मखमली
पहनें हम।

गर्मा गरम
मूंगफली भा जाए
गुड़ भी खाओ।

लो आया आया
मौसम सरदी का
मन को भाए।

सूखे मेवे के
लड्डू बन जाएंगे
गोंद भी डालो।

वासंती रंग
छाया है चहुं ओर
भरे उमंग।

रंग बिरंगी
चादर ओढ़ धरा
है इतराए।

प्रकृति रुप
आकर्षित करें
ईश कृपा है।

पिंकी परुथी "अनामिका"

ग़ज़ल

हेमंत बोर्डिया

ख़्वाब की शक्ल ज़रूरत से अलग होती है
दिल की दुनिया तो हकीकत से अलग होती है

ज़िन्दगी का जो सबक पढ़ लिया तो ये जाना
ये किताबों की नसीहत से अलग होती है

नशा शराब का हो या नशा हो शोहरत का
ये आदतें तो मुसीबत से अलग होती है

उबर न पाओगे ताउम्र, ये वो धोखा है
ज़िस्म की प्यास, मुहब्बत से अलग होती है

है पसीने की कमाई में वो ख़ुशबू लोगों
जो कि हासिल-ए-किस्मत से,अलग होती है

कई माँ - बाप तो देखे यहाँ बेघर होते ,
कोई औलाद वसीयत से अलग होती है ?

लिये तकलीफों को जाते हो जो काबा-काशी
ये तो माँ-बाप की ख़िदमत से अलग होती है

हेमंत बोर्डिया

ग़ज़ल

कवि राजेश पुरोहित

उसने नज़र हटा ली मेरे होश उड़ गए।
जीने का सहारा था मेरा हम लुट गए।।

हटा कर देखा चिलमन से उनने हमको तो।
हम आसमां का चांद भूल जमीं पर झुक गए।।

उनकी नज़र का कमाल यूँ हुआ धड़कन बढ़ गए।
इश्क जैसे अल्फ़ाज़ से वो पल भर में रुक गए।।

खून से लिखे खत संभाल कर रखे थे हमने।
पता नहीं चला और एक दिन आंधी में उड़ गए।।

हम सोच नहीं पाए ये इतना जल्द क्यों।
राही मोहब्बत के" पुरोहित "कई राहों में छूट गए।।

कवि राजेश पुरोहित

ग़ज़ल

मणि बेन द्विवेदी

मिला क्या तुम्हे मुझको बर्बाद करके!
कहाँ जा रहे हो ये दिल शाद करके!!

जिसे जिंदगी मैं समझती रही थी!
वही चल दिए मुझको बर्बाद करके!

जो मेरे थे कभी ग़ैर अब हो गएँ हैं!
हुयी आँख फिर नम उन्हें याद करके!!

गए ज़िंदगी मेरी बर्बाद करके!
मोहब्बत से अपने वो आज़ाद करके!!

बना दो मिटा दो है मर्ज़ी तुम्हारी!
करेंगे भी क्या तुमसे फ़रियाद करके!!

तुम्हे मेरी पहचान उस वक़्त होगी!
चली जाउंगी तुमको आज़ाद करके!!

वजह सिर्फ तुम हो मेरी ज़िंदगी की!
जिए जा रही हूँ तुम्हे याद करके!!

चाहो ग़र जो पाना सुकूँ ज़िंदगी में!
देखो मुफ़लिसी की तुम इमदाद
करके!!

मिला क्या तुम्हे मुझको बर्बाद करके!
जिए जा रहीं हूँ तुम्हे याद करके!!

मणि बेन द्विवेदी

ग़ज़ल

जयकृष्ण चांडक 'जय'

ज़ीवन के संग,, टली-टली,
सांसें जब तक,, चली-चली!

साथ जब तक देती रही वो,
लगी सभी को,, भली-भली!

राह उसी की देख रहे सब,
कमी आज है,, खली-खली!

एक दिखा बजरंग के जैसा,
सब चिल्लाऐ,, बली-बली!

एक निगोडे मुकद्दर ने क्यूं,
ज़िन्दगी सबकी,, छली-छली!

किसी को छप्पन भोग मिले,
क्यों किसी की रोटी,, जली-जली!

फिर बसंत की आहट सुन,
खिलने लगी है,, कली-कली!

बस्ती क्यों वीरान हुई 'जय',
सूनी पड़ी है,, गली-गली!

जयकृष्ण चांडक 'जय'
हरदा मप्र

मुक्तक

शिरीन भावसार

दिल के आशियाने में जब कोई आता हैं,
उम्मीदों के चराग सैकड़ो जला जाता हैं
मुकम्मल न भी हो पाये जो इश्क़ तो क्या,
पहली मोहब्बत को आखरी बना जाता है।।

बढ़ाकर हाथ न जाने क्यों मैं रुक सी जाती हूँ,
ऐतबार नहीं तेरा या खुद से घबरा जाती हूँ,
कुछ आदत सी हो गई है मुझे तन्हा चलने की,
न जाने क्यों अब मैं , काफ़िले से ड़र जाती हूँ।।

दुखने पर भी मन कई बार रिश्ते जोड़े रखती हूँ,
टूट कर स्वयं हर बार स्नेह बंधन बांधे रखती हूँ
माना धोखे और छलावे बहुत है रिश्तो में मगर,
बनाये रखने को प्रेम, कई बार,आँखे मूंदे रखती हूँ।।

ये माना मंजिल दूर थी रास्ता कठिन था,
लेकिन उसे चुना भी हम दोनों ने साथ था,
वक्त की आँधी में प्यार फिर क्यों बिखर गया,
समझ ही न पाये हम क़सूर इसमें किसका था।

शिरीन भावसार

मुक्तक

रागिनी शर्मा

ग़ज़ल लिखते नहीं हम कुछ एहसास लिखते हैं !
मोहब्बत भींगे हुए पल कुछ खास लिखते हैं !
शब्द हैं मामूली मैं न जानती हूँ लिखना ;
तृप्ति लिखते हैं और कुछ -कुछ प्यास लिखते हैं !

मुस्कुराहटों के फूल खिलाना चाहती हूँ ।
ज़िन्दगी से नज़रें मिलाना चाहती हूँ ।
दर्द के आँसू बहाने से होगा न कुछ *हासिल*,
खुशियों को उनका हक दिलाना चाहती हूँ।

जबसे तुम आये जीवन में,धड़कन धड़कन छंद हुईं ।
बहके बहके ख़्वाब हुए हैं,चितवन प्रीत प्रबंध हुई ।
साँसें लगती दीवानी सी ,मख़मल से एहसासों की,
गीत ग़ज़ल नित लिखे ज़िन्दगी ,संदल -सा अनुबंध हुई ।

हर दिन ही हँसता हुआ हरसिंगार लगता है ।
गोशा गोशा बिखरा हुआ तेरा प्यार लगता है ।
मीठी मीठी नज़्म लिखती हैं धड़कनें दिल पर,
संसार सारा ही गुलमोहर गुलज़ार लगता है ।

रागिनी शर्मा

कविता

नीरा जैन

बस ये ही हैं प्यार

प्यार हैं ख़ुशी कब मिल जाये
प्यार हैं बरखा
कब बरस जाये
प्यार हैं ठंडक
मन को कब शीतल कर जाये
प्यार हैं भरोसा
कब पा लिया जाये
प्यार हैं गर्मी न जाने कब
रंगो में ऊष्मा भर जाये
प्यार हैं मुस्कान
न जाने कब होठो पर खिल जाये।
प्यार हैं एक अहसाँस
न जाने मन को कब छू जाये
प्यार रंग हैं न जाने
जीवन में कब बिखर जाये
धुप में भी छाव जैसा लगे प्यार
सर्दी की ओस सा होता प्यार
पहली बारिश की बून्द सा लगे प्यार
प्यार खाव्ब सा कब पूरा हो जाये
बस ये ही हैं प्यार
बस ये ही हैं प्यार

नीरा जैन

कविता

'कविता नागर'

"स्वांग"

प्रतिष्ठा पाने की ललक में 'बक' करता ढोंग है।
बहुधा सज्जनो की भाँति 'राजहंस' ही मौन है।

शुभ्रता पाकर है उससी,धारण किया है उससा मौन।
कलरव करेगा राजहंस,तब जान लेंगे तुम हो कौन।

ज्यों राजहंस की भांति ही तुम स्वांग करते हो अहो,
तो नीर-क्षीर विलग कर दो,सच्चे सिद्धहस्त तुम जो हो।

हंस सा रंग पाकर बगुला लाभ ही उठाएगा।
मन की मलिनता छलकेगी,गुण दुर्जनों के गाएगा।

सौ दुर्जनों की वाणी हो,पर घातक है एक सज्जन का मौन।
कलरव करो हे राजहंस,अबकी बार रहना ना मौन।।

'कविता नागर'

<u>कविता</u>

अनिता मंदिलवार "सपना"

मुझे, तुम याद आये

हां, तुम
बहुत याद आये,
जैसे उग आये हो
पत्थरों में
लाल पलाश
कि बंजर धरती में
खिले हो सूरजमुखी
कि मरूस्थल में
चली हो ठण्डी बयार....
हां तुम,
बहुत याद आये .....
कि पगडंडियों को
पारकर गाव जाना है
और देखना है
सुन्दर सपने
कि छोड़ने हैं स्मृति पटल पर
हाशिये
कि शहर, गाॅव या स्कूल
और बाजार के बाद भी
याद करना है तुम्हें
एक अनिवार्य काम
की तरह
सच. ! दोस्त
कितना कठिन है
तुम्हें याद करना
....

अनिता मंदिलवार "सपना"

कविता

मंगला रस्तोगी

रेलवे ट्रेक

एक मैं और एक तुम
जैसे कोई रेलवे ट्रेक
निश्चित दूरी पर
साथ हैं पर साथ नहीं हैं
फिर भी एक साथ मिलकर
चला रहे हैं अपनी अपनी
जिंदगी की रेल गाड़ी
बीच का अन्तराल
हमें कहीं मिलने नहीं देता
सुनो तुम बस साथ चलते रहो
यूहीं एक निश्चित दूरी पर
मना के सफर लम्बा है

मिलना मुश्किल है लेकिन
मुसाफ़िर को मंजिल तक
पहुंचाना भी जिम्मेदारी हमारी है
कोई तो कडी होगी..
हमारे लिए जो बनी होगी
सहारे उस कडी के
चलते चलते साथ
पा जाये मै और तुम भी
अपनी मंजिल जिन्दगी के सफर में!

मंगला रस्तोगी

<u>कविता</u>

विनीता चैल

आयी शाम सुहानी

दिन ढल गया देखो ,
आई शाम सुहानी ,
सूरज की रक्तिम लाली भी ,
छिप गई देखो बादलों के पीछे,
धीरे -धीरे होने लगी साँझ ,
मंद -मंद बहे हवा पूर्वाई ,
कितना सुहाना लगे मौसम ,
देखो गोधूलि की बेला आयी ,
दूर गगन में उड़ते पंछी ,
लौटने लगे अपने घोसलों में,
दूर जहाँ तक नज़र फैलाओ ,
देखो छायी हरियाली ही हरियाली ,
धानी चुनरिया ओढ़ के देखो ,
सज गई हमारी धरती रानी ,
साँझ के दीपक जले घर -आँगन में ,
गूंजे देखो शंख नाद की मंगल ध्वनि ,
कितना सुन्दर नज़ारा देखो ,
आयी शाम सुहानी ।

विनीता चैल बुंडू ,राँची ,झारखण्ड

कविता

उपासना पांडेय 'आकांक्षा'

बेटियां

क्यों मुझे कैद किया घर की उस
अंधेरी सी कोठरी में
जहाँ सांस भी लेना मुश्किल है
मेरा क्या कसूर था कि बेटी बनकर
आयी हूँ
रातो को बेटे घूमे आज़ाद बनकर फिर
क्यों
हर अंकुश बेटियां सहे क्यों जब वो
भी जीना
चाहती है वो भी खुले आसमान में
महसूस करने दो
खुद को जानना चाहती हैं क्या वजूद
है बेटियों का
क्यों हर रोज एक निर्भया बन दम
तोड़ रही है
कसूर किसका है उन बेटो का जो
अपनी माँ बाप के
लाड़ले है पैसो का गुरूर लिए घूमते है
कब रुकेगा ये सब पता नही मगर
क्यों लोग बेटियो को मार देते है कोख
में
क्या कसूर है उस अजन्मी बेटी का
जिसने दुनिया देखी तक नही
क्यों इज्जत के नाम पर बेटियो को
मार रहे हैं
क्यों हर बार दहेज के लालच में
जलती है बेटियां
किस बात की सजा मिलती है बार-
बार
कोई पुरुष मित्र बन जाये तो चरित्र
हीन हो गयी
बलात्कार हुआ तो निर्भया बनकर
जान गवां बैठती है
क्या दिया इस समाज ने बेटियो को
सिर्फ जननी बना दिया उसको
मगर पूजना छोड़ कर उसको
अपमान ही मिला जब भी खुद के
लिए कुछ किया
क्या थमेगी ये यातनाये जो औरतों
पर
हर रोज हो रही है कब बदलेगा ये
समाज
कब बदलेंगी सोच बंदिशे क्यों सहती
है बेटियां।।

" उपासना पांडेय"(आकांक्षा)

कविता

सुरेखा 'स्वरा'

एक प्यारी सी सुलह

चलो कुछ देर चल
बैठते है उस
क्षितिज पार पेड़ तले
बन्द पलको को मूंदे
हाथ पर हाथ धरे...!
झांक एक दूजे की
आँखों मे बस एक
मिठी तकरार करें..!
सुनो कहें एक बात
कानों में आकर
हम तुम्हारे है
बस तुम्हारे ही रहें...!
थोड़ा गिला थोडा
प्यार चलो मिलकर
एक प्यारी सी
सुलह करें...!
आसमाँ मेरा
जमी मेरी फिर क्यों
हम इस दो गज के
लिए शिकायत करें...!

सुरेखा 'स्वरा'

कविता

अरुण खरे

अपनी कौम पर कुर्बानी का जज्बा नहीं जिसमें,
ऐंसे कायरों का मर जाना ही बेहतर !
थोड़े से धुऐं से जिसकी सांस रुध जाती हो,
ऐंसे बीमारों का तर जाना ही बेहतर !!
तुम्हारा कायराना खून इस देश के काबिल नहीं रहा !
इस खून को मिट्टी में मिल जाना ही बेहतर !!
तुम जिस जगह में पढ़े हो वहाँ कायरता ही धरम है !
शौर्य गाथायें तुम्हें सुनाने से न सुनाना ही बेहतर !!
कायरता एक शापित पापित नीचता है !
दुश्मनों के मुखबिर हो जाओ,
तुम्हारे लिये यही काम है बेहतर !!
मैं जानता हूँ तुम्हें सब कुछ मुफ्त में मिला है,
न आग में तपे हो, न सांचे में ढले हो,
जिस सफलता में पसीना शामिल नहीं होता,
वो रास्ते भटकता है, उसे बरकत नहीं होती,
बुराई के रास्ते हमेशा आसान होते है,
वो आसान ही चुनता है,
उसके लिये हर आसान काम है बेहतर !!
तुम सब कुछ सरल खोजते हो,
दोस्त सरल, दुश्मन सरल,
दुश्मनों से लड़ने के वजाय,
घुटने टेकना सरल,
तुम अपने समाज की खातिर क्या लड़ोगे ,
तुम दुश्मनों के तलवे चाटो,
तुम्हारे लिये तलवे चाटना है बेहतर !!
!!अरुण खरे !!

दोहे

मनोज जैन 'मधुर'

तन गुदड़ी में भर लिया,मन की मिटी न ठंड।
निर्धनता नित भूख का,करती पाठ अखंड ।1।
जाड़ा चाबुक पीठ पर,मार रहा दिन रैन।
झोपड़ियों के हो रहे, सावन भादौं नैन ।2।
कसा शिकंजा ठंड ने, हुई हिमानी रात।
वैरागी मन में खिले नये प्रणय जलजात ।3।
पारा लुढ़का शून्य पर, जमा नदी का नीर।।
दिन दिन दूनी बढ़ रही, झोपड़ियों की पीर ।4।
ओढ़ रजाई धुंध की, सोया है दिनमान।
बैरी जाड़ा छोड़ता ,शीत लहर के बान ।5।
फिर से हमसे हो गई,पहले वाली भूल।
अपने को बदला नहीं,मौसम के अनुकूल ।6।
देख करिश्मा रह गए,लोग धरा के दंग।
अम्बर में फैला दिए,किसने सातों रंग ।7।
मौसम ने कुछ इस तरह, दी हमको सौगात।
ऋतुपति लेकर आ गया,फूलों की बारात ।8।

मनोज जैन 'मधुर'

दोहे

भावना तिवारी, कानपुर

कब जाने किस मोड़ पर, मुआँ दिखाए पीठ।
ला पटके बाज़ार में, वक़्त बड़ा है ढीठ।1।
समाचार में आ गए, जितने 'डर्टी' 'केस'।
उससे दुगुने कर रही, जनता सचमुच 'फेस'।2।
आँखों, आँखों में लिया, अंग-अंग को नाप।
होठों से करते रहे, राम नाम का जाप।3।
जीवन की इस दौड़ में, थम जाना है हार ।
काँटों से लड़कर मिले, हैं फूलों के हार ।4।
उत्सव के नेपथ्य में, जमी दर्द की धूल।
ज्यों कमरे में काग़ज़ी, सजे हुए हैं फ़ूल।5।
जुगनू, सूरज से कहे, तेरी क्या औकात ।
तेरी-मेरी जगत में, अलग-अलग जब जात।6।
पाँवों के छाले हँसे, शरमाए सब फूल।
हिम्मत के आगे झुके, ख़ुश्बू देते शूल।7।
जीवन की इस रेस में, अलग-अलग क्यों चाल।
उत्तर तो पाये नहीं, हम ख़ुद हुए सवाल।8।

भावना तिवारी, कानपुर

कहानी

यादें

मनमोहन भाटिया

दोपहर के समय उमाशंकर घर में अकेले आराम कर रहे थे। बच्चे, बहुएं और पोते, पोतियां सभी काम पर गए हुए थे। उम्र छिहत्तर वर्ष। तभी फोन की घंटी बजी। फोन पर उसकी बड़ी बहन कौशल्या थी।

"उमा कितने समय बाद बात हो रही है। कैसे हो?"

"ठीक हूं, जीजा और बच्चे कैसे हैं?"

"सब ठीक हैं। युक्ति का रिश्ता तय किया है।"

युक्ति कौशल्या की पोती है।

"बहुत बधाईयां बहन। शादी कब की है?"

"शादी दो महीने के बाद। पूरे परिवार ने आना है। यही तो मौका होता है जब पूरा परिवार एकत्रित होता है।"

"हां जरूर, मैं तो जरूर आऊंगा। बाकी बच्चों का अपना हिसाब है, सबको बोलूंगा।"

दो महीने बाद पूरा परिवार युक्ति के विवाह में सम्मलित हुआ। हंसी मजाक, मिलना जुलना, बच्चों युवाओं का नाच गाना के बीच विवाह संपन्न हुआ। विवाह के अगले दिन सभी रिश्तेदारों ने रुक्सत ली। कौशल्या ने उमाशंकर को रोक लिया।

"भाई बरसों बाद मिले हैं, कुछ दिन रुक जाओ।"

बहन के निवेदन पर उमाशंकर रुक गया। अगली सुबह उमाशंकर की छः बजे नींद खुली। बिस्तर छोड़ देखा सभी सो रहे हैं। उमाशंकर वापिस कमरे में आ गया और खिड़की खोली। ताजी हवा के झोंकों से शरीर तरोताजा हो गया। खिड़की से सामने समुंदर देखने लगा। कौशल्या के फ्लैट से सामने समुंदर नजर आता है। हालांकि कोई बीच नही है मछुहारे मछली पकड़ते हैं। इक्का दुक्का नौका नजर आ रही थी तभी कौशल्या ने उमाशंकर को जागते देख आवाज दी।

"भाई जल्दी उठ गए। चाय लोगो?"

बहन की आवाज सुन उमाशंकर बैठक में आ गया। कौशल्या ने चाय बनाई। चाय पीते हुए दोनों बातें करने लगे।
"भाई बोलते तो तुम कम ही थे अब ऐसा लगता है कि तुम एकदम चुप हो गए हो?"
"छिहत्तर की उम्र हो गई है, तेरी भाभी के जाने के बाद जीवन सूना हो गया है। बच्चे अपने में मस्त रहते है, उनकी अपनी जिंदगी है और अलग सोच। हर पीढ़ी के हालात और सोच अलग हो जाती है। सारा दिन काटना मुश्किल होता है इसलिए काम कर रहा हूं। थोड़ा शरीर शिथिल हो गया, काम भी उतना तेज रफ़्तार से नही होता। शुक्र है कि कंपनी में पिछले तीस वर्षों से काम कर रहा हूं। मेरे काम के प्रति समर्पण को देखते हुए कंपनी रिटायर नही कर रही। कंपनी के मुश्किल समय में काम किया उसी के कारण मालिक कहता है कि घर बैठ कर क्या करोगे, जब तक हाथ-पैर चल रहे हैं काम करते रहो और दूसरी वजह पैसा भी है, बच्चों के सामने हाथ नही फ़ैलाने पड़ते।"
तभी उमाशंकर के जीजा भी उठ कर भाई-बहन की गुफ्तगू में शामिल हो गए।
"मुझे भी बताओ भाई-बहन में क्या चल रहा है?"
"मेरा चुपचाप भाई क्या चलाएगा?"

तीनो हंस पड़े। कौशल्या औऱ परिवार का अपना व्यवसाय है जिसको उसके भांजे चला रहे है। जीजा दिन में दो-तीन घंटे ऑफिस में समय व्यतीत करते हैं।
"उमा तुम इधर आ जाओ। एक ही उम्र के हैं, हंस बोल कर अब बाकी जिंदगी गुजारेंगे।" जीजा ने उमाशंकर से कहा।"
"जीजा की बात मान लो, अब इधर आ जाओ। फार्महाउस चल कर रहेंगे। समुंदर का किनारा तुम्हे हमेशा अच्छा लगता है।"
"बहन जब भी यहां आता हूं, समुंदर देख कर अति प्रसन्नता होती है। मुम्बई का समुंदर दिल्ली में नजर नही आता। बालकनी से सड़क का ट्रैफिक ही नजर आता है।"
"फिर यहां आ जा न। वर्षो बीत जाते हैं हमें मिले।"
"बहन के घर रहना मुझे अच्छा नही लगता। तुमने भी दिल्ली आना छोड़ दिया।"
"कुछ उम्र ढल गई और अब न मां न बाप औऱ न भाभी, किससे मिलने आऊं?"
"मैं हूं न।"
"तू हमेशा चुप रहता है, बच्चे अपनी दुनिया में मस्त हैं। जो तेरा हाल वही मेरा।"

"मैं छिहत्तर का तुम अस्सी की। हमारी सन्यास की उम्र है, चलो, हरिद्वार रहते है।" कह कर उमाशंकर मुस्कुरा दिया।
"बिना दवा के चल नही सकते। अपना घर ही हरिद्वार है। हरिद्वार छोड़ अपने फार्महाउस चल कर दो-तीन दिन रहते है और पुरानी यादें ताजा करते हैं।"
"चल बहन इस बहाने कुछ दिन का साथ भी हो जायेगा, मालूम नही फिर कब मिलना हो।"
"ऐसा क्यों बोलता है?"
"धीरे-धीरे सब चले गए। तेरी भाभी भी गई, यार दोस्त भी चले गए। सिर्फ एक दोस्त बाकी है वो भी बिस्तर पर है, कभी-कभी मिलने चला जाता हूं। उसे देखता हूं तो यही अहसास होता है कि हमारी रवानगी कब हो जाये, हमें खुद को नही पता चलेगा।"
"प्रकृति का नियम है, सबने एक दिन जाना है।" जीजा ने कहा। "छोड़ो इन बातों को, जितने दिन भी बाकी हैं अच्छे हंस कर बीते, मैं तो ईश्वर से यही हर रोज सुबह उठ कर मांगता हूं।"
"इसलिए नौकरी छोड़ कर घर नही बैठा। खाली दिमाग से उदासी ही जीवन में आती है।"

चलो फार्महाउस चलते हैं। उमाशंकर ने दो दिन फार्महाउस में बिताने की सोची परंतु एक सप्ताह बिता दिए। लॉन में बैठते और पुरानी बातें याद करते।
"बहन तुम्हारा माली ढंग से बागवानी नही कर रहा है। गुलाब के पौधों की कटिंग नही की तभी छोटे फूल आ रहे है।" कह कर उमाशंकर ने गुलाब के पौधों की कटिंग शुरू की। तीन घंटे तक बागवानी करता रहा।"
दोपहर खाना खाने के पश्चात आराम करते हुए कौशल्या ने कहा। "भाई तुम बागवानी नही भूले।"
"बचपन में हम दोनों अपने घर के पौधों को दुरुस्त करते थे।"
"हां क्या दिन थे वो। अब घुटने के दर्द से अधिक चलना नही होता। बस बैठे-बैठे जो काम हो जाये, वही कर लेती हूं।"
"पतंग उड़ाया करते थे। तुम पतंगों में मांजा बांधती थी और कन्नी देती थी।"
"जब थोड़ी ऊपर हो जाती थी तब मैं पतंग हाथ में लेती थी। पतंग को सबसे ऊंचा रख कर पेंच लड़ाना सब याद है। बचपन की हर बात याद है भाई।"
"बहन अब सिर्फ यादें रह गई है। कबड्डी, खो-खो खेलना, पतंग उड़ाना और कंचे खेलना।"

"तुम्हारे पास कंचों के दो बड़े बक्से थे।"
"हां जब कॉलेज गए तब ये खेल छूटे थे।"
दो दिन के लिए कौशल्या ने उमाशंकर को रोका था और जीजा बहन के साथ एक सप्ताह गुजर गया। शनिवार की शाम सब बच्चे फार्महाउस आये और पूरी रात पुराने किस्से सुनाते रहे। रविवार शाम की वापस मुम्बई आये। दो दिन रुक कर मंगलवार उमाशंकर दिल्ली के लिए रवाना हुआ।
आज वर्षों बाद भाई-बहन गले मिल कर फूट-फूट कर रोए।
जीजा ने उनको रोते देख कहा "इतना तो तुम हमारी शादी पर नही रोये जितना आज रो रहे हो।"
"जीजा मुझे नही मालूम अब कब मिलना होगा। उम्र का तकाजा है कब ऊपर का टिकट कट जाए, बस यही सोच कर रोना आ गया।"
यह सुन कर जीजा की भी आंखें नम हो गई।
मनमोहन भाटिया, दिल्ली

कहानी

"भक्त की परीक्षा"

नीरजा मेहता

मीना बचपन से ही भगवान शिव की भक्त थी। हर सोमवार उपवास रखना, मंदिर जाना, शिवलिंग को जल चढ़ाना, शिव चालीसा और आरती गाना कभी नहीं भूलती थी। पढ़ाई के साथ भी पूजन कार्य समय पर पूरा कर लेती थी। मीना की सहेली सुनीता को ईश्वर पर विश्वास तो था किंतु पूजा, व्रत, मंदिर जाना आदि पर उसको विश्वास नहीं था।

मीना विवाह के बाद भी अपने घर की जिम्मेदारियों को और विद्यालय में अध्यापिका की भूमिका भी बखूबी निभाने के साथ मंदिर जाने का समय भी निकाल लेती थी। सोमवार का व्रत उसने तब भी नहीं छोड़ा था। मीना सुनीता से कहती, "तुम भी सोमवार का उपवास किया करो, भगवान शिव बहुत भोले हैं, अपने भक्तों पर जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं।" पर सुनीता ने उसकी बात न कभी मानी और न ही धर्म और भक्ति पर कभी बहस की। वो सोचती ये तो अपनी-अपनी श्रद्धा है।

मीना के पति सरकारी नौकरी में थे। दोनों सहेलियों की शादी भी उसी शहर कानपुर में हुई जहाँ वो बचपन से रह रही थीं अतः विवाह बाद भी उनका मिलना जुलना चलता रहा। मीना का एक बेटा था और सुनीता की दो बेटियाँ। अक्सर मीना मन ही मन कहती, "काश मेरे पास भी एक बेटी होती"। धीरे-धीरे दोनों के बच्चे बड़े हो गए और मीना का बेटा, तरुण बारहवीं कक्षा में आगया। तरुण पढ़ाई में बहुत होशियार नहीं था फिर भी मेहनत तो करता था। उसके पिता तरुण को कहते, "इस बार परीक्षा में अच्छे नंबर लाने हैं क्योंकि तभी अच्छे कॉलेज में प्रवेश मिलेगा"। वो उनकी बात सुनता पर जवाब नहीं देता।

बारहवीं की परीक्षा के लिए तरुण ने बहुत मेहनत की पर जब परिणाम आया तो उसको 50 प्रतिशत नंबर ही मिले थे। तरुण बहुत परेशान और दुःखी हो गया। उसके पिता ने तरुण पर न सिर्फ बहुत क्रोध किया बल्कि उसको मारा भी।

पिता के रोज़-रोज़ के तानों से परेशान होकर तरुण ने घर छोड़ दिया। मीना और उसके पति ने तरुण को ढूँढने के लिए हर जतन किया पर तरुण नहीं मिला। दुःखी हो मीना एकदम चुप सी हो गयी और उसके पति भी खामोश रहने लगे, शायद उनको अब पछतावा हो रहा था। दुःख के कारण मीना के पति एकदम टूट गए थे और लगभग एक वर्ष बाद उसके पति चल बसे। मीना निपट अकेली रह गयी।

मीना के दुख में दुःखी हो अक्सर सुनीता अब मीना के घर जाने लगी। एक दिन जब सुनीता मीना के घर जा रही थी तो उसको रास्ते में ही मीना हाथ में पूजा की थाली लिए हुए मिली।

"मीना, तू इतनी देर से मंदिर से वापस आ रही है।"

"हाँ सुनीता, घर में भी अकेले क्या करूँगी, वहीं बैठकर भजन सुनती रहती हूँ।"

"मीना तू तो कहती थी कि भगवान शिव बहुत भोले हैं, अपने भक्तों पर दया करते हैं, बहुत जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं पर तुझे क्या मिला।"

"नहीं सुनीता, ऐसा मत कहो, भगवान अपने भक्तों की परीक्षा लेते हैं।"

"पूरा घर उजड़ गया, ये कैसी परीक्षा है मीना।"

मीना ने सुनीता से बहस नहीं की और उसको अपने घर ले गयी। कुछ देर बात करके सुनीता वापस घर आ गयी लेकिन उसके बाद सुनीता ने कभी भी मीना से पूजा पाठ को लेकर कोई बात नहीं की। ऐसी परीक्षा का कारण वो नहीं समझ सकी।

लगभग दस वर्ष बाद एक दिन जब सुनीता अपनी सहेली मीना के घर बैठी थी तो दरवाज़े पर घंटी बजी। इस समय कौन होगा ये सोचकर मीना ने दरवाज़ा खोला तो दाढ़ी में एक युवक को देखकर चौंक गई। जाना पहचाना सा चेहरा लगा और दो सेकंड देखकर एकदम चीख पड़ी मीना--

"तरुण मेरा बेटा तू, कहाँ था अब तक, कितनी तड़पी हूँ तेरे लिए, क्यों चला गया था"।

मीना यही कहती जाती और खुशी से रोती जाती। बेटे को लिपटाकर चूमती जाती। सुनीता को भी तरुण को पहचानने में कुछ मिनट लगे क्योंकि वो जवान हो चुका था। सुनीता की भी खुशी के कारण आँखें छलक आईं।

तरुण से बात करी तो घर छोड़ने के बाद उसने अपनी आप बीती बताई। कितने दिन भूखा सड़कों पर सोया फिर बच्चों को पढ़ाने का काम किया, साथ ही पढ़ाई की। माता पिता की याद में बहुत रोया वो पर उसने बताया कि उसने फैसला कर लिया था कि अब जब कुछ बन जाये तभी घर जाएगा। उसने बताया कि उसने कई छोटी

नौकरी की, दिन भर काम करता और रात को पढ़ाई और इस तरह उसने नौकरी के साथ पत्राचार द्वारा एम.बी.ए. तक पढ़ाई की और अब किसी प्राइवेट फर्म में अच्छे पद पर कार्यरत है। तभी उसकी नज़र पिता की फ़ोटो पर गयी जिसपर माला लगी हुई थी। तरुण चौंक गया और माँ की तरफ प्रश्नमिश्रित नज़रों से देखने लगा। मीना ने उसको बताया कि तेरे घर छोड़ने के बाद तेरे पिता कितना दुःखी रहने लगे थे और खुद को दोषी मानते थे और इसी दुःख ने उनकी जान ले ली। तरुण फूट-फूट कर रो पड़ा। मीना ने सुनीता को देखकर कहा,

"सुनीता, देखा तुमने, मैं कहती थी न कि भगवान अपने भक्त की परीक्षा लेते हैं और आज मैं उनकी परीक्षा में पास हो गयी। सुनीता, कभी भी विपत्ति से घबराकर ईश्वर पर से आस्था नहीं छोड़नी चाहिए, अगर उन्होंने परेशानी दी है तो राह भी वही दिखाएंगे।"

दूसरे दिन सोमवार था, मीना मंदिर गयी तो ये देखकर हैरान रह गयी कि सुनीता शिवलिंग पर बेलपत्र चढ़ाकर दूध, दही व जल से अभिषेक कर रही है।

पूजा पूरी कर सुनीता ने मीना को देखकर कहा, "आज सावन का पहला सोमवार है और मैंने आज उपवास रखा है, ॐ नमः शिवाय"।

नीरजा मेहता

ईसप की कथा से अनुदित व प्रस्तुत

विनोद कुमार जैन

शेर और डाल्फिन

- समुद्र किनारे टहलते हुए शेर की दृष्टि लहरों पर अठखेलियां करती डाल्फिन पर पडी । उसने डाल्फिन को तुरंत प्रस्ताव दे दिया,कि सभी जीवों को आपस में अच्छे मित्र होना चाहिये। तुम समुद्र के सभी जीवों के राजा हो, और मैं धरती के सभी जीवों का सर्वसम्प्रभुतासम्पन्न राजा हूं । डाल्फिन ने सहर्ष इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। थोडे ही दिनों बाद शेर का युद्ध एक जंगली भैंसे के साथ हो गया ,उसने डाल्फिन को सहायता के लिये पुकारा। डाल्फिन की उसे मदद करने की तीव्र इच्छा होते हुए भी वह एक क्षण के लिये भी जमीन पर नहीं जा सकी । शेर ने उसे अपशब्द कहे, और उसे धोखेबाज कहा ।डाल्फिन ने विनम्रतापूर्वक कहा , नहीं मेरे प्यारे मित्र मुझे दोष मत दो ,प्रकृति ने मुझे समुद्र में स्वतंत्र सत्ता देने के साथ ही जमीन पर रहने की अनुमति बिल्कुल नहीं दी । (ईसप की कथा से अनुदित व प्रस्तुत)

मक्खी और सांड

- एक मक्खी सांड के सिंग पर बैठ गई ,और एक लम्बे समय तक वहां ठहर गई । जव उसे उडना था, तो उसने सांड से कहा,हम लोगों ने एक लम्बा समय साथ गुजारा। आज मेरी विदाई है। क्या तुम मेरे जाने से चिंतित नहीं हो जाओगे।क्या तुम्हें मेरी याद नहीं आयेगी? सांड ने कहा ,मुझे तो यह कभी पता ही नहीं चला ,कि तुम कब आये ,तो इस बात से क्या फर्क पडेगा, कि तुम कब और कहां जा रहे हो? कुछ लोग पडोसियों के बजाय अपने मन में ही स्वयं को महत्वपूर्ण मान लेते हैं ।

बहेलिया और तीतर

- एक तीतर बहेलिये के हाथ लग गया । जैसे ही बहेलिये ने उसे मारना चाहा,तीतर ने उसे छोड देने की याचना की । उसने ये भी कहा ,यदि तुम मुझे प्राण

रक्षा का वचन देतेहो,तो मैं तुम्हें अनेक तीतर भेंट दे सकता हुं । बहेलिये ने कहा ,अब तो मुझे तुम्हे मारने में कोई संकोच नहीं होगा। जो अपने परिजनों का नहीं हुआ ,उस पर दया करने का कोई कारण नहीं बनता।

भेडिया और मेमना

- एक मेमना जिसने किसी मंदिर में शरण ली थी ,उसे भेडिये ने फुसलाया कि तुम वहां से जल्दी निकल लो । मंदिर का पुजारी कल तुम्हारी बलि दे देगा। मेमने ने उत्तर दिया ,कि यह मेरा सौभाग्य होगा कि मैं एक पवित्र उद्देश्य के लिये अपने जीवन को सौंप दूं ,बजाय इसके की तुम्हारा आहार बनूं।

खरगोश और मेंढक

- **अपनी कायरता से निरंतर पीडित होकर खरगोशों के समूह ने निर्णय लिया , कि इस निराशा और भय के जीवन से मुक्ति का उपाय है, कि हम किसी चट्टान से कूदकर अपने प्रतिदिन के दुःख से और जीवन से पूरी तरह मुक्ति पा लेते हैं । ऐसा निश्चय कर वे सभी समूह में नदी के पास एकत्रित होने लगे। वहां समीप में रहनेवाले मेंढकों को खतरे का अंदेशा हुआ ,तो भयभीत होकर एक के बाद एक नदी में कूदने लगे । मेंढकों को नदी में डूबकर खोते हुए देखकर खरगोश ने चिल्लाकर अपने साथियों से कहा ,देखो हमसे भी अधिक कमजोर जानवर संसार में रहते हैं ।**

अरब और ऊँट

- **एक अरब ऊँटवान जब अपने ऊंट पर सारा बोझ लाद चुका,तो उसने उससे पूछा,कि पहाडी के किस और तुम चलना पसंद करोगे,चढाई की ओर या उतराई की ओर । ऊँट ने अत्यंत मासूमियत से बिना किसी तर्क के उत्तर दिया, आप मुझसे ऐसा क्यों पूछते हैं ? क्या रेगिस्तान से गुजरने के सभी समतल मार्ग बंद हो चुके हैं ।**

अनुवाद :- विनोद कुमार जैन

लघुकथा

अदृश्य फफोले

जब भी रूबी आलमीरा खोलती उस नन्हीं सी जान की तस्वीर देख ही लेती थी । आज भी उसकी तस्वीर निहार रही थी और यादों में खोई थी --"दूसरी संतान भी बेटी देखकर सबने ऐसे मुँह बनए थे जैसे सब दिल से बेटे की दुआ माँग रहे हो । अरे जेठानी कब अपनी होती है ?"--रूबी उस तस्वीर से जैसे बातें कर रही हो --"पर गुड़िया मैंने तुझे अपने कलेजे से कब दूर किया ? मेरे बारे तो सोचती, साढ़े तीन महीने में ही उकता गई ? मुझे छोड़ जाने में कुछ भी सोचा नहीं ? देख दुनियां की तरह ये आंसू भी निष्ठुर हो गए । अब ये भी नहीं टपकते । इतने साल हो गए मगर एक-एक पल हमें याद है । वो खिलखिलना, वो रोना और वो तेरा ....।"

सोचते-सोचते रूबी वहीं बैठ गई --"सबने दुख प्रकट किया था । लेकिन दूसरी वाली जेठानी ने 'दहेज के लाखों रुपए भी तो बच गए ।" --ये शब्द दिल पर ऐसे लगे जैसे किसी ने दिल पर तेजाब फेंक दिया हो ।"--तस्वीर पर टपके आंसू को पोंछकर चूमते हुए --"उन्नीस साल हो गए पर आज भी वो दिल पर बने फफोले सूखे नहीं हैं ।"

--पूनम झा
कोटा राजस्थान

लघुकथा

वो सो गये

थोड़ा मंदबुद्धि था नथ्था ।इसका मतलब ये तो नही कि समाज के लिये मजाक का साधन हो। दिन भर से भूखी मजदुरी करके आई बुड़ी माँ बोली न्थथा ए नथ्था कहा हे रे । हे राम कहा होगा आज तो घर भी नही आया ।बिन इसके निवाला ऊतारते नही उतरता। नथ्था रोज गाँव के दुर वाले चबुतरे पर बेठ जाया करता था ।डरावने समाज से दुर अपनी दुनिया मे ।खजले करिया कुत्ते के साथ ही बितता पुरा दिन ।करिया भी उस समय गाँव का गब्बर कुत्ता था ।क्या मजाल रात को चोर आ जाये । जी जान तो लगा दी थी करिया ने । समय के चक्र से कोन बच पाता हे । करिया भी बुड़ा हो गया साथ मे खाज कि खतरनाक बिमारी । कोई कहा समझ पाता पर उसकी व्यथा अब । अब तो उससे छोटे पिल्ले भी अब जवानी दिखाने मे कसर ना छोड़ते । नथ्था ओर खजला दोनो पास बेठते । अब दोनो को कोन मुह लगाये । मनचलो को समुह आया ओर खजले को पत्थर मार दिया खजले के घाव का दर्द असहनीय था। जोर से भोकने लगा खजला दर्द से । पास के मास्टर जी को सोये 15 मिनट ही हुये थे । वे गुस्से से उठे ओर दे लकड़ी मार खजले को न्थथा चोकन्ना था। कहा समझ पाते हे मास्टर जेसे लोग दुसरे के दर्द को ।मास्टर जी दुसरी छड़ी मारने वाले ही थे कि खजले ने जान बचाने के लिये काट दिया । अब तो खजला अपराधी बन गया था । एक आतंकवादी हो गया था अब तो पुरे गाँव के लिये । एक दिन फैसला हुआ कि खजले को मार दिया जाये ये गाँव के लिये खतरा हे । पर कौन मारेगा? मास्टर जी ने बड़े प्यार से नथ्थे को बुलाया ओर 2जहर कि रोटी खजले को खिलाने को दे दी । नादन को क्या पता था जहर होता क्या हे ।बेचारा। नथ्थे केचबुतरे पर जाते ही खजला करिया दुम हिलाते आ गया ।नथ्था एक कोर खजले को खिलाता ओर एक वो खाता । पुरे कोर खाते हे दोनो बहोश हो गये कुछ देर मे प्राण पखेरू ऊड़ गये थे । रात फिर हो गई थी मक्खीयाँ अब भी भीनभीना रही थी । गाँव वासी कह रहे थे खजले कि बिमारी लाग गी बाई ओके तो जेसे मर ग्यो । बुड़ी माँ अब भी बुला रही थी नथ्था ए नथ्था ।!! नथ्था रे ए नथ्था !!

अनिल नागर

लघुकथा

अब और नही

शैलेश को गये हुये नौ दिन बीत गए,, आज दसवां दिन है।

वह अपने कमरे में लस्त पस्त पड़ी थी। तभी उसने सुना .."बहू को अच्छे से तैयार कर दो , पैरों में महावर, हाथों में भर भर चूड़ियां और हां..मांग में सिंदूर भी भरवा देना"।

उसके हृदय में एक टीस सी उठी,आंखों से आंसू बह निकलें।

"भाभी..! लाओ पैरों में रंग लगा दें"।

पैर पकड़ते हुये नाउन ने कहा !

"नही..मैं नही लगवाऊंगी"।

"पर भाभी..बड़ी बुआ ने कहा है"।

वह कुछ नही बोली,तेज़ आवाज़ में रो पड़ी।

"क्या हुआ ?" ये रीति है अपने यहां की..! और तुम हो कि...!"आवाज़ सुनकर बुआजी आ गई थीं।

"मुझसे ऐसा नही होगा बुआजी.!" वह पैरों पर गिर गई ।

"रहने दो नाउन"!

जब तक बुआजी कुछ कहतीं ,,अंदर आती हुई मां बोल पड़ी।

"ये क्या अनर्थ कर रही हो भौजी ?"

"अब इससे बड़ा अनर्थ क्या होगा जीजी...! हमने अपना बेटा खोया है, तो बहू ने भी अपना पति खोया है! और पति के जाने का दुख पत्नी से ज़्यादा किसी को नही होता है!

"कैसी रस्म है ये..?" श्रृंगार करके, फिर तुरंत नहलाकर सिंदूर धुलाना,चूड़ियां तोड़ना और बिछिया उतारवाना...! कितनी तकलीफ होती होगी"।

"हमने देखा है अपनी अम्मा को ! पिताजी के चले जाने के बाद कितना मानसिक तनाव भोगा था उन्होंने ! तब हम कुछ नहीं कर पाये थे !"

"पर जीजी.. अब और नही !!" मां की आवाज़ में दृढ़ता थी।

कल्पना मिश्रा

लघुकथा

अंजाम

अगवा करने के एक साल के अंदर ही दिमाग में नफरतों
के बीज बो डाले।
ख्यालात बदल दिये।
आत्मघाती मानव बम बना डाला उस कम उम्र मासूम को।
उसी के वतन में , उसी के कस्बे मे भेज दिया ,
दहशत गर्दी को अंजाम देने के लिये।
चौक से गुजरते नजर पडी
मा-बाप पर।
अचानक अम्मा -अब्बा चिल्लाता लिपट गया उनसे।
एक धमाका।
चिथडे उड़ गये उसके और उसके कुनबे के।
कोहराम के बीच एक गहरा सन्नाटा छा गया।

कमल मेहरोत्रा

आलेख

पत्रकारिता: शैशव से भविष्य तक

कैसे कैसे हालात हो गये ..

जब आज देश के हर कोने से पत्रकारिता (यानी मीडिया) को कोसा जा रहा है , तमाम तरह के आरोप लग रहे है , जिव्हा पर सत्य आने से पहले बीसियो बार रुक रहा है, कही कोई गाली दे रहा है तो कोई धमकी , तब एसे कालखंड मे उद्देशो को लेकर चिंतन स्वाभाविक है |

स्वरूप का चिंतन , मौलिकता के ख़तरे भयभीत नही करते अपितु उचाई पर जाने की इच्छा को और बल प्रदान करते है ...

"एक समय आएगा, जब हिंदी पत्र रोटरी पर छपेंगे, संपादकों को ऊंची तनख्वाहें मिलेंगी, सब कुछ होगा किन्तु उनकी आत्मा मर जाएगी, सम्पादक, सम्पादक न होकर मालिक का नौकर होगा। "

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अपनी कलम की ताक़त से देश और दुनिया के सामने पत्रकारिता का लोहा मनवाने वाले बाबूराव विष्णु पराड़कर जी ने यह बात कही थी। उस समय उन्होंने शायद पत्रकारिता के भविष्य को भांप लिया था।

इतिहास के पन्नो मे सिमटी ये छोटी सी बात वर्तमान के हालत पर सीधा कटाक्ष ही नही करती वरन भूतकाल के गर्भ मे भविष्य के अध्याय भी बुन आई है |

पत्रकारिता की शुरूआत जहा मिशन से हुई थी जो आजादी के बाद धीरे-धीरे प्रोफेशन बन गई |

इक्कीसवी सदी की शुरुआत और सूचना क्रांति के विस्फोट के साथ-साथ पत्रकारिता का विकास के साथ साथ मूल्यो के हास का दौर भी शुरू हो गया है। लगभग 92674

पंजीकृत अखबारों और 600 से अधिक समाचार चैनलों के साथ देश के मीडिया ने पूरे विश्व में अपनी एक जगह तो बनाई है , किंतु विडंबना है की यह तरक्की पाठक को खो कर और ग्राहक के साथ प्राप्त हुई है , आधुनिक जीवन की बढ़ती व्यस्तताओं और बदलती भाषा शैली के मद्देनजर पत्रकारिता ने अपना कलेवर भी बदला है। अब पत्रकारिता 24×7 यानी चौबीस घंटे, सातों दिन सजग तो रहती है, चीजों को लाइव यानी साक्षात् दिखाने की कोशिश करती तो है, स्टिंग यानी परदे के पीछे झांकने की चेष्टा भी करती है और स्थानीय मुद्दों से जुड़ने का प्रयत्न भी करती है किंतु फिर भी मूल्यानुगत पतन के दौर को आमंत्रित भी कर ही रही है | निश्चित ही आज देश में मीडिया का व्यापक प्रसार हुआ है, परंतु दूसरी ओर उसका नैतिक और चारित्रिक पतन भी हुआ है। पत्रकारिता में बाजार, विज्ञापन, पैसे व सनसनी की महत्ता भी बढ़ी है और मानवीयता, निष्पक्षता व खबरीपने में गिरावट आई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि समाचारों में भी केवल सनसनी और चटपटेपन को ही प्रमुखता मिल रही है। समाज के उच्च वर्ग कीअय्याशियो को खबर बनाने के लिए एक पेज थ्री नामक आयाम विकसित हो गया है।

आख़िर यह दौर क्यू आया ?

पत्रकारिता के मापदंडो की पुन: विवेचना ना हो पाने की दशा मे आज मीडिया कलंकित हो रहा है

ध्यान रहे कि भले ही आधुनिक पत्रकारिता का जन्म और विकास यूरोप में हुआ है, भारत में इसका एक स्वतंत्र स्वरूप विकसित हुआ। यह स्वरूप पश्चिम के स्वरूप से न केवल भिन्न था, बल्कि कई मायनों में उससे काफी बेहतर भी था। भारत में पत्रकारिता अमीरों के मनोरंजन के साधन के रूप में विकसित होने की बजाय स्वतंत्रता संग्राम के एक साधन के रूप में विकसित हुई थी। इसलिए जब 1920 के दशक में यूरोप में पत्रकारिता की सामाजिक भूमिका पर बहस शुरू हो रही थी, भारत में पत्रकारिता ने इसमें प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी। 1827 में राजा राममोहन राय ने पत्रकारिता के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा था, " मेरा सिर्फ यही उद्देश्य है कि मैं जनता के सामने ऐसे बौध्दिक निबंध उपस्थित करूं, जो उनके अनुभवों को बढ़ाए और सामाजिक प्रगति में सहायक सिध्द हो। मैं अपने शक्तिशाली शासकों को उनकी प्रजा की परिस्थितियों का सही परिचय देना चाहता हूं ताकि शासक जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने का अवसर पा सकें और जनता उन उपायों से परिचित

हो सके जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पायी जा सके और उचित मांगें पूरी कराई जा सकें।”

आख़िर इतने उन्नत उद्देश्यो के साथ शुरू हुई यह जंग आज अपने बौनेपन पर क्यू आ चुकी है |हिन्दी पत्रकारिता आज हाशिए पर आ रही है |

भाषाई पत्रकारिता की प्रमुख चुनौतिया :

स्वाधीनता के बाद परिस्थितियां बदली , स्वाधीनता मिलने के बाद से ही पत्रकारिता के इस भारतीय स्वरूप के सामने चुनौतियां भी बढ़ने लगीं थीं। 15 अगस्त, 1947 को 'जनता' (समाचार) ने लिखा था, ”भारत में पत्रकारिता के समक्ष तीन प्रकार की कठिनाइयां हैं। पहली समस्या वित्त की है। दूसरी चुनौती है, स्वतंत्र समाचार पत्रों के पूंजीवादियों से संबंध, जो समाचार पत्रों को लाभ कमाने के साधन के रूप में विकसित करने और इसके द्वारा प्रतिक्रियावादी आर्थिक सिध्दांतों को स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। प्रबंध संपादकों द्वारा पूंजिवादियों के हितों के विरुद्ध किसी भी विचार को प्रकाशन से रोका जा रहा है। तीसरी समस्या है, व्यावसायिक पत्रकार, जो अपने कैरियर की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पत्रकारिता के सिध्दांतवादी व मिशनरी भूमिका को दबा देते हैं।” वास्तव में यह तीसरी समस्या ही सबसे बड़ी समस्या है। व्यावसायिक पत्रकार और पत्र-पत्रिकाएं, दोनों की जो शृंखला विकसित हुई है, उसे पत्रकारिता के सिध्दांतों और उद्देश्यों से कोई लेना देना नहीं है। टेलीविजन चैनलों की तो बात ही करना व्यर्थ है। उनका तो जन्म ही यूरोप की नकल से हुआ है। उनसे किसी भी प्रकार की भारतीयता की अपेक्षा करना ऐसा ही है जैसे कोई बबूल का वृक्ष बोए और आम के फलने की आशा करे। आज यदि महात्मा गांधी या राजा राममोहन राय या विष्णु हरि परांडकर या माखनलाल चतुर्वेदी जीवित होते तो क्या वे स्वयं को पत्रकार कहलाने की हिम्मत करते? क्या उन जैसे पत्रकारों की विरासत को आज के पत्रकार ठीक से स्मरण भी कर पा रहे हैं? क्या आज के पत्रकारों में उनकी उस समृध्द विरासत को संभालने की क्षमता है? ये प्रश्न ऐसे हैं, जिनके उत्तर आज की भारतीय पत्रकारिता को तलाशने की जरूरत है, अन्यथा न तो वह पत्रकारिता ही रह जाएगी और न ही उसमें भारतीय कहलाने लायक कुछ होगा।

पत्रकारिता और सेंसरशिप

वर्ष 1947 से लेकर वर्ष 1975 तक पत्रकारिता जगत में विकासात्मक पत्रकारिता का दौर रहा। नए उद्योगों के खुलने और तकनीकी विकास के कारण उस समय समाचार

पत्रों और पत्रिकाओं में भारत के विकास की खबरें प्रमुखता से छपती भी थी| समाचार-पत्रों में धीरे-धीरे विज्ञापनों की संख्या बढ़ रही थी व इसे रोजगार का साधन माना जाने लगा था।

वर्ष 1975 पत्रकारिता के दुखद कालखंड के रूप मे उभर कर सामने आया ,एक बार फिर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर काले बादल छा गए, जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा कर मीडिया पर सेंसरशिप लागू दी। सरकार के विपक्षी पार्टियो की ओर से भ्रष्टाचार, कमजोर आर्थिक नीति को लेकर उनके खिलाफ उठ रहे सवालों के कारण इंदिरा गांधी ने प्रेस से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता छीन ली। लगभग 19 महीनों तक चले आपातकाल के दौरान भारतीय मीडिया को हर तरह से कमजोर किया गया| उस समय दो समाचार पत्रों द इंडियन एक्सप्रेस और द स्टेट्समेन ने उनके खिलाफ आवाज उठाने की कोशिश की तो उनकी भी शासकीय वित्तीय सहायता रोक दी गई। इंदिरा गांधी ने भारतीय मीडिया की कमजोर नस को अच्छे से पहचान लिया था। उन्होंने मीडिया को अपने पक्ष में करने के लिए उनको दी जाने वाली वित्तीय सहायता में इजाफा कर दिया और प्रेस सेंसरशिप लागू कर दी। उस समय कुछ पत्रकार सरकार की चाटुकारिता में स्वयं के मार्ग से भटक गए और कुछ चाहकर भी सरकार के विरूद्ध स्वतंत्र रूप से अपने विचारों को नहीं प्रकट कर सकें। कुछ पत्रकार ऐसे भी थे जो सत्य के मार्ग पर अडिग रहें। आपातकाल के दौरान समाचार पत्रों में सरकारी प्रेस विज्ञप्तियां ही ज्यादा नजर आती थी। यही वो दौर था जब से खबरो को विज्ञापन के वजन से तोला जाने लगा फिर कुछ सम्पादकों ने सेंसरशिप के विरोध में सम्पादकीय खाली छोड़ दिया।अख़बार का संपादकीय पृष्ट काला कर दिया , किंतु इंदिरा गाँधी की हटधार्मिता के कारण पत्रकारिता अपने योवनकाल मे ही मूल्यो से भटक गई |
यौवन अवस्था ही मनुष्य की भटकाव की ज़िम्मेदार होती है | पत्रकारिता का भी वही हश्र हुआ |
लालकृष्ण आडवाणी ने अपनी एक पुस्तक में कहा है-

“उन्होंने हमें झुकने के लिए कहा और हमने रेंगना शुरू कर दिया।”

1977 में जब चुनाव हुए तो मोरारजी देसाई की सरकार आई और उन्होंने प्रेस पर लगी सेंसरशिप को हटा दिया। इसके बाद समाचार पत्रों ने आपातकाल के दौरान छिपाई गई बातों को छापा।
पत्रकारिता द्वारा आजादी के दौरान किया गया संघर्ष बहुत पीछे छूट चुका था और पत्रकारिता अब पेशे में तब्दील हो चुकी थी।भारत में एक और ऐसी घटना घटी जिसने पत्रकारिता के स्वरूप को एक बार फिर बदल दिया। वर्ष 1991 की उदारीकरण की नीति और वैश्वीकरण के कारण पत्रकारिता पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा और पत्रकारिता में धीरे-धीरे व्यावसायिककरण का दौर आने लगा।

यही दौर है जिसने कलम की ताक़त को चुनौती दे दी , कहते है ना वक्त से बड़ा कुछ भी नही होता , वक्त की मार कहे या सियासत की हठ !!
आख़िर नियति को यही मंजूर था, यही लिखा था कलमविरो के भाग्य मे , जिस कलम को तलवार भी ज़्यादा ताकतवर माना जाता था उसी की मजबूत निब को तोड़ा जाने लगा |
सियासत भी पहले से कही ज़्यादा बदल गई थी , विश्वास और मानवीय मूल्यो की बलि दे कर लोग यहा सपनो के महल बुनने लग गये थे ,
इसी दौर मे रोशनी की किरण भी आई , जिन्होने अपनी कलम को सियासत के नापाक मंसूबो के आगे झुकने नही दिया |
उम्मीद बनी , कुछ बेहतर लिखा जाने लगा , किंतु आज के इस दौर मे बेहतर और सच लिखा भी गया तो वो बहरे हो गये जिनको सच सुनना था |

खबरो पर बाज़ारवाद का असर

इन सब के अलावा सबसे मूल चुनौती आधुनिकता से रंग मे पत्रकारिता का मूल स्वरूप है |
खबरो पर बाज़ारवाद हावी होता जा रहा है , जहा एक और निस्वार्थ सेवा पत्रकारिता का मूल उद्देश्य था आज वह मूल्य नदारद है |आख़िर अब पत्रकारिता "मिशन" नही बल्कि "प्रोफ़ेशन" बनता जा रहा है |
और जब प्रोफ़ेशन बन ही रहा है तो उसमे कही ना कही वित्त की विकराल समस्या और विज्ञापनवाद का हावी होना भी कही ना कही पत्रकारिता के नैतिक पतन मे शामिल है |

खबरो से ज़्यादा विज्ञापन लाना और उन्हे प्रकाशित करना आज मजबूरी बन चुकी है , क्यूकी अख़बार का दम रद्दी की कीमत से बस तोड़ा ही तो ज़्यादा है , जबकि लागत मूल्य से कोसो दूर |

अख़बार की लागत मूल्य १५ रुपये २५ रुपये के बीच होती है और वह बिकता है महज २रुपये या ४ रुपये मे |

बचा हुआ लागत मूल्य निकालने का जिम्मा विज्ञापन विभाग पर आ जाता है जिस कारण से कई ख़बरे रोशनी मे आने से रह जाती है | क्यूकी विज्ञापन विभाग की भी अपनी मजबूरी हो जाती है खबरो मे हस्तक्षेप करना | जबकि होना तो यह चाहिए की विज्ञापन विभाग , कभी संपादकीय कक्ष मे कोई हस्तक्षेप ही ना करे , किंतु ये तब तक नही हो सकता जब तक अख़बार का दम उसकी लागत मूल्य तक ना पहुचे , ताकि वित्त की कोई समस्या ही नही हो |

तब तो सच्चा दस्तावेज़ फिर बन जाएगा अख़बार , और न्यूज़ चेनल भी 250 चैनल २०० रुपये मे ना दिखाए जाए |

आख़िर पत्रकारिता के वास्तविक मूल्यो की बलि देकर कोई केसे क्रांति की अपेक्षा कर सकता है |

टकसाल और सेवा मे रास्ते बहुत अलग होते है , जो रास्ता टकसाल की तरफ जाता है उसका कही भी किसी भी समय सेवा मे मार्ग से मिलन असंभव है | वही अंतर है पुराने समय की पत्रकारिता और आधुनिकता का लिबास पहनी हुई पत्रकारिता मे |

पुराने जमाने की पत्रकारिता नज़रिया देती थी, क्रांति का माद्दा रखती थी, कलम की ताक़त से सियासत को भी हिला कर रख देती थी , किंतु वर्तमान समय की पत्रकारिता मे उपरोक्त कोई गुण नज़र कम आता है |

आख़िर चिंतन का परिणाम सभी पत्रकारो को मिलकर ही निकलना पड़ेगा की आख़िर कैसे भटके हुई कलम को फिर से गौरवान्वित क्षण दे जिससे वह पुन: निर्दोष बन जाए |

आख़िर हमारा कर्तव्य बनता है की घर मे लगे मकड़ी के जाल से हम ही घर को साफ करे |अन्यथा परिणाम बहुत ही विनाशकारी होगा, शायद पत्रकारिता का अस्तित्व ही ख़तरे मे आ जाए |

किसी कवि ने ठीक ही लिखा है ,

"तुमने कलम उठाई है तो वर्तमान लिखना ,
हो सके तो राष्ट्र का कीर्तिमान लिखना .
चापलूस तो लिख चुके हैं चालीसे बहुत ,
हो सके तुम हृदय का तापमान लिखना ..
महलों मैं गिरवी है गरिमा जो गाँव की ,
सहमी सी सड़कों पर तुम स्वाभिमान लिखना."

आपका साथी,

अर्पण जैन "अविचल"

प्रधान संपादक- खबर हलचल न्यूज

www.khabarhulchal.com

09893877455

संस्मरण

राष्ट्रभाषा के संवर्धन के लिए मेरे प्रयास

राधा गोयल

मैंने आज तक जिस कार्यालय में भी काम किया है, वहाँ यह कोशिश की है कि हिंदी को प्रोत्साहन मिले। एक कार्यालय में जनसम्पर्क बहुत ज्यादा होता था। आजकल लोगों को अंग्रेजी बोलने का कुछ ज्यादा ही शौक चर्राया हुआ है, क्योंकि हमारी मानसिकता ही इस प्रकार की हो गई है। जो आता चटर-पटर अंग्रेजी बोलता था। मैं उनसे कहती थी कि *क्या आप अनपढ़ हैं?*

'नहीं हम तो पढ़े लिखे हैं'।

'यदि आप पढ़े-लिखे हैं तो मैं चाहूँगी कि आप हिंदी में बात करें।यदि अनपढ़ हैं तो कोई बात नहीं। अंग्रेजी में बात कर सकते हैं'।

यह सुनकर इतना शर्मिन्दा होते थे कि धीरे धीरे हिन्दी में बात करने की आदत डाल ली।रोजाना कम से कम तीन सौ लोगों से पाला पड़ता था।

कमरे में हमने एक गुल्लक रख ली थी। एक कमरे में हम पाँच लोग बैठते थे। सभी से यह कहा कि जो भी अंग्रेजी में बोलेगा उसे जुर्माना देना पड़ेगा।एक ग़लती पर 1/- जुर्माना। आम तौर से अंग्रेजी के बहुत सारे शब्द हैं जो हमारी बोलचाल में इस प्रकार घुल मिल गए हैं कि हमें मालूम ही नहीं होता कि हमने कब वो शब्द अंग्रेजी में बोल दिया। मैंने यह भी स्पष्ट किया कि स्कूल को विद्यालय बोलने की कोई जरुरत नहीं है। ट्रेन को लौहपथगामिनी कहने की भी जरूरत नहीं है। साइकिल को द्विचक्रवाहिनी कहने की भी जरूरत नहीं है, लेकिन बेमतलब के अंग्रेजी शब्द बीच-बीच में बोलने की सख्त मनाही है।

उन दिनों बड़ा मज़ा आता था। रोजाना कोई न कोई बेध्यानी में अंग्रेजी का शब्द बोलता था और मैं उसके नाम के नीचे

1+1+1+1+1+1+1+1+1+1

लिखती रहती थी और शाम को उसे उतने पैसे गुल्लक में डालने पड़ते थे। हँसते-हँसते दिन कैसे बीत जाता था, मालूम ही नहीं चलता था। अब सबको उसमें बहुत

मज़ा आने लगा और मुझे भी अच्छा लगा। इसी बहाने मैं *अपनी राष्ट्रभाषा के संवर्धन में कुछ योगदान कर रही हूँ*, यह सोचकर खुशी होती थी।

हमारे ही कार्यालय में एक दक्षिण भारतीय सहयोगी भी थे। वैसे हिंदी समझ भी लेते थे और बोल भी लेते थे। एक दिन किसी के विवाह का कार्ड आया था। कार्यालय में पूरे स्टाफ के नाम से एक ही निमंत्रण पत्र दिया जाता था और पूरे स्टाफ की तरफ से शगुन इकट्ठा करके स्टाफ सेक्रेटरी वह शगुन सबकी तरफ से दे आता था तथा जो अन्य लोग जाते थे अलग से शगुन दे आते थे।

जिस दिन शादी थी उस दिन हमारे उन दक्षिण भारतीय सहयोगी ने काम करते करते अचानक पूछा :-'मैडम आज क्या क्रियाकर्म है?'

मैं एकदम घर घबरा गई कि हमारे किस मेंबर के साथ ऐसा कुछ घटा है कि मुझे मालूम तक नहीं है कि आज उनके यहाँ क्रिया कर्म में जाना था और मुझे पता ही नहीं है।

'जल्दी बता क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं हुआ मैडम! बस यह पूछ रहा हूँ कि कितने बजे का क्रियाकर्म है?'

'अरे पहले यह तो बता कि किसको क्या हुआ है?जल्दी बता।अब घबराहट होनी शुरू हो गई है।'

'इसमें घबराने की क्या बात है?'

'अरे भाई तू जल्दी बता कि किसको क्या हुआ है।साँस गले में अटकी हुई है।'

मेरी घबराहट देखकर बोला:-- 'मैडम!परसों शादी का कार्ड आया था ना। उसका क्रियाकर्म कितने बजे है, वो पूछ रहा हूँ।'

तब बात समझ में आई और बड़ी हँसी भी आई। मुझे हँसते हुए देखकर उसन कहा कि आपको इतनी हँसी क्यों आ रही है?'

' तुमने बात ही ऐसी कही है।'

'क्यों मैंने ऐसा क्या कहा?'

'जो तुमने कहा, यदि वहाँ जाकर ये शब्द बोलोगे तो हम तो छित्तर खाएँगें, मगर बेटा तुम्हें तो मार-मार कर टकला करके ही भेजेंगे।'

'क्यों मारेंगे?जो आप कह रही हैं, वही तो मैं भी कह रहा हूँ।'

'शादी में जाना हो तो उसे कार्यक्रम कहते है।क्रियाकर्म नहीं कहते।'

'तो मैंने भी तो यही पूछ रहा हूँ कि वो क्रियाकर्म कितने बजे है?'

'कार्यक्रम बोलो'

'क्रियाकर्म '

'कार्यक्रम '

'क्रियाकर्म'

'मेरे बाप! मैंने जोड़े हाथ।मुझे कर माफ।मेरे हालत पे रहम खा।कर थोड़ा सा मेरे साथ इंसाफ। तू प्रोग्राम बोल दे।'मैने लगभग रोते हुए कहा

'फिर आप जुर्माना लगाओगी।'

'इस शब्द के लिए तेरा जुर्माना माफ मेरे बाप'

राधा गोयल

साक्षात्कार :- प्रीति 'अज्ञात
(संस्थापक एवं संपादक- हस्ताक्षर, ब्लागर एवं समाजसेवी)
साक्षात्कारकर्ता :- प्रीति सुराना

प्रीति सुराना **प्रीति 'अज्ञात**

नवंबर 2012 को किताबों की दुनिया से रूबरू होने की मंशा लिए हम दो हमनाम सखियां फेसबुक के पटल से ही एक दूसरे से परिचित हुईं। सोशल मीडिया का दिया एक नायाब तोहफा ये दोस्ती है।
'प्रेम' व 'प्रीति' परिभाषित होकर भी अपरिभाषित है, फिर तो यह ज्ञात होकर भी 'अज्ञात' है । ऐसी ही शख़्सियत में से जो प्रीति भी है और अज्ञात भी ऐसी ज्ञात 'बहुमुखी-प्रतिभा' को ढूँढ़ कर इस अप्रतिम-शब्दों की धनी प्रीति 'अज्ञात' से हुई बातचीत के कुछ अंश उनके संक्षिप्त **परिचय** के साथ :-

नाम:- **प्रीति 'अज्ञात**
जन्मस्थान:- भिंड (म. प्र.),
संप्रति - संस्थापक एवं संपादक ('हस्ताक्षर' मासिक वेब पत्रिका)
ब्लॉगर, सामाजिक कार्यकर्ता
वर्तमान निवासस्थान - गुजरात
शिक्षा - स्नातकोत्तर (वनस्पति विज्ञान), डिप्लोमा इन संस्कृत टीचिंग, एम. ए. हिन्दी (अध्ययनरत)
भाषा ज्ञान - हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, संस्कृत

काव्य-संग्रह - मध्यांतर (हिन्द-युग्म प्रकाशन)

साझा काव्य-संग्रह (11) - एहसासों की पंखुरियाँ, मुस्कुराहटें...अभी बाकी हैं, हार्टस्ट्रिंग्स "इश्क़ा", काव्यशाला, गूँज, सरगम TUNED, शब्दों के वंशज, पुष्पगंधा, 100 क़दम, सृजन शब्द से शक्ति का, साहित्यायन

साझा संस्मरण-संग्रह (1) - यादों के दरीचे

संपादन (4)- एहसासों की पंखुरियाँ, मुस्कुराहटें..अभी बाकी हैं, मीठी- सी तल्खियाँ (भाग-2), मीठी- सी तल्खियाँ (भाग-3)

विशेष -

* इंडिया टुडे की वेबसाइट ichowk पर नियमित आलेख प्रकाशित
* विभिन्न राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, वेब पत्रिकाओं, ब्लॉग्स में कविताएँ/आलेख प्रकाशित
* मासिक वेब पत्रिका ज्ञान मंजरी में नियमित स्तंभ 'कैमरे की नज़र से'(2014)* 'साहित्य-रागिनी' वेब पत्रिका में मुख्य संपादक (सितंबर 2013 से सितंबर 2014 तक)
* तृतीय एवं चतुर्थ 'दिल्ली अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव' के लिए कवितायेँ चयनित एवं पुस्तक में प्रकाशित
* 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में, 2016 में 'गूँज' एवं 'रेवान्त' के मंच से तथा 2017 में 'गूँज' के मंच से काव्यपाठ
* षष्ठम अंतर्राष्ट्रीय ब्लॉगर सम्मेलन, बैंकॉक (थाईलैंड) में 'साहित्य की समृद्धि में महिलाओं का योगदान' विषय पर आलेख प्रस्तुति (जनवरी' 2016)
* स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर के स्नातकोत्तर अध्ययन विभाग द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में 'महिला सशक्तिकरण चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ'.विषय पर आलेख प्रस्तुति (9 सितम्बर 2017)

पुरस्कार -

* 'म.प्र पत्र-लेखक संघ' द्वारा पुरस्कृत
* 'अखंड भारत' मासिक पत्रिका द्वारा 'साहित्य-गौरव' सम्मान (2013)
* 'कवि हम-तुम' संस्था द्वारा राष्ट्रीय सम्मान (जनवरी'2015, दिल्ली)
* सर्वश्रेष्ठ ब्लॉगर के लिए 'परिकल्पना साहित्य सम्मान' 2015 (अंतर्राष्ट्रीय ब्लॉगर सम्मेलन, बैंकॉक,थाईलैंड)
* ग्रामीण समाज सेवा समिति, भरतपुरी -गोण्डा(उ.प्र.) द्वारा 'साहित्य श्री' सम्मान (2016)
* मध्यप्रदेश की महिला रचनाकारों के लिए दिए गए 'शब्द-शक्ति सम्मान' (सितंबर 2016, भोपाल) से सम्मानित

⁎ प्रतिमा रक्षा समिति, करनाल, हरियाणा द्वारा 'शान-ए-भारत अवार्ड' (मार्च 2016) एवं सावित्री बाई फुले को समर्पित women empowerment award (जनवरी 2017, करनाल, हरियाणा) से सम्मानित

⁎ 'स्पंदन' महिला साहित्यिक एवं शैक्षणिक संस्थान, जयपुर द्वारा अखिल भारतीय डॉ. कुमुद टिक्कू कविता प्रतियोगिता में 'श्रेष्ठ कविता' पुरस्कार (जनवरी 2017)

⁎बड़ौदा में आयोजित 'यंग गुजरात' कार्यक्रम में मशहूर शायर जावेद अख्तर और पूर्व केन्द्रीय मंत्री प्रफुल्ल पटेल द्वारा अपनी पुस्तक 'मध्यांतर' के लिए Author Recognition Certificate से सम्मानित (मार्च 2017, बड़ौदा)

⁎ 'ग्रामीण पत्रकारिता विकास संस्थान', ग्वालियर (म.प्र.) द्वारा 'हिन्दी पत्रकारिता एवं साहित्यिक गौरव सम्मान' (मई, 2017, ग्वालियर)

संपर्क -

ई मेल - preetiagyaat@gmail.com

पत्रिका एवं ब्लॉग्स - 'हस्ताक्षर' मासिक वेब पत्रिका

http://www.hastaksher.com/index.php

ख़्वाहिशों के बादलों की..कुछ अनकही, कुछ अनसुनी

http://agyaatpreeti.blogspot.in/

यूँ होता...तो क्या होता !

http://http://preetiagyaat.blogspot.in/

Pages -

https://www.facebook.com/Photography-by-Preeti-Agyaat-716689415046995/

https://www.facebook.com/Saudamini-The-Voice-Unheard-996120907117529/

https://www.facebook.com/KhwahishonKeBaadlonKiKuchhAnkahiKuchhAnsuni/

प्रीति सुराना:- सबसे पहले आप अपनी संप्रति 'हस्ताक्षर' के बारे मे जानकारी दे,..

प्रीति 'अज्ञात:- 'हस्ताक्षर' हमारी साहित्यिक पत्रिका है, जिसमें स्थापित साहित्यकारों के साथ ही नए प्रतिभावान रचनाकारों को अपने हर अंक में शामिल किया जाता है। इसके लिए मात्र एक ही नियम है कि लेखनी में ताक़त होना चाहिए। हम जुगाड़-प्रथा से कोसों दूर एक ईमानदार पत्रिका के रूप में उभर रहे हैं, जो धर्म और राजनीति से परे एक सकारात्मक समाज में जीने की उम्मीद जगाने को प्रयासरत है। करीम पठान 'अनमोल' जैसे कर्मठ, लगनशील और उत्तम सोच रखने वाले साथी संपादक के साथ ने इसे और बेहतर बना दिया है। हम दोनों को हमारी टीम के सदस्यों का सहयोग भी सदैव मिलता रहा है। यह हम सब की पत्रिका है जिसे पाठकों और रचनाकारों ने भरपूर स्नेह दिया है।

प्रीति सुराना:- आप आज जिस जगह पर हैं वहां तक पहुंचने में विशेष भूमिका या मार्गदर्शन किसका रहा? कुछ अपनी पृष्ठभूमि के बारे में बताएं।
प्रीति 'अज्ञात:-शिक्षा के माहौल में ही जन्मी हूँ। मेरे पिता पी एच डी हैं तथा वे अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर और महाविद्यालय के प्राचार्य रहे हैं, माँ भी डिग्री कॉलेज में इतिहास की व्याख्याता थीं। उन्होंने राजनीति शास्त्र से भी एम ए किया है। अभी दोनों सेवानिवृत्त हो चुके हैं। मेरा भाई, मुझसे एक वर्ष बड़ा है। वो एक अच्छे पद पर अमेरिका में कार्यरत है। विवाह पूर्व एक वर्ष मैं भी कॉलेज में वनस्पति विज्ञान की सहायक व्याख्याता रही हूँ। मेरे नाना जी भी पी एच डी थे और मिर्ज़ापुर (उत्तरप्रदेश) के महाविद्यालय में प्राचार्य पद पर रहे। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में वे पी एच डी गाईड के तौर पर भी अपने सेवाएँ देते रहे। उन्हें फ्रेंच भाषा में गोल्ड मैडल भी मिला था। मेरे पति रिसर्च में हैं और उन्होंने भी फार्मेसी में पी एच डी किया है। बच्चे भी पढ़ने में ख़ासी रूचि रखते हैं।
यदि यूँ कहा जाए कि मैं किताबों के साथ ही पली-बढ़ी हूँ तो भी गलत न होगा। बचपन से अब तक एक-दो क़रीबी मित्रों के अलावा यही मेरी सच्ची साथी और उत्तम मार्गदर्शक रही हैं।

प्रीति सुराना:-जन सामान्य किस तरह आपके कार्यक्षेत्र से लाभान्वित हो सकते हैं?
प्रीति 'अज्ञात:- 'सौदामिनी' के द्वारा उन लोगों की मेल/सन्देश /फ़ोन के माध्यम से counselling की जाती है जो अपने जीवन में कभी-न-कभी यौन शोषण या घरेलू हिंसा का शिकार हुए हैं। उन्हें यह अहसास कराया जाता है कि जो कुछ भी हुआ, उसके लिए उन्हें स्वयं को दोषी या दया का पात्र समझने की कोई आवश्यकता नहीं।

जो समाज/परिवार/मित्र आपको गलत मानते हैं बेहतर है आप उनसे दूरी बनाकर प्रसन्न रहने की कोशिश करें। क्योंकि दोषी आप नहीं, उनकी दूषित सोच है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा और दुःख भी कि स्त्रियों और बच्चों के अलावा पुरुष भी ऐसे हादसों के शिकार होते आये हैं। इन लोगों का उबरना और खुशहाल जीवन जीना इन जैसे कई अन्य लोगों को प्रेरणा देता है, भले ही वो अपना दुःख हमसे कहें न कहें पर हमें ख़ुशी है कि उनकी सोच में कुछ बदलाव तो अवश्य आता होगा।

'हस्ताक्षर' में नई प्रतिभाओं को अवसर मिलता है कि वो वरिष्ठ साहित्यकारों को पढ़ें और स्वयं भी पत्रिका में प्रकाशित हों। अब तक 600 से अधिक रचनाकार हमसे जुड़ चुके हैं। लाभ की बात अगर की जाए तो दोनों ही पक्षों को बराबर होता है।

समाज में अच्छाई और बुराई दोनों ही विद्यमान हैं। बुरी घटनाओं का गहरा असर तो पड़ता ही है और उन पर चर्चा भी होती है पर साथ ही सकारात्मक बातों और 'अच्छा भी होता है' की थीम को लेकर लिखने से कभी नहीं चूकती। अब ये पाठकों पर है कि इससे लाभ लें या कंधे उचकाकर आगे बढ़ जाएँ। कहीं कोई बाध्यता तो संभव हो नहीं सकती।

प्रीति सुराना:- लक्ष्य सामने हो तब भी मार्ग में अवरोध अनेक आते हैं? क्या आपको कभी इस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ा? यदि हाँ तो आपने इन समस्याओं को कैसे सुलझाया?

प्रीति 'अज्ञात:- हर अच्छे कार्य की आलोचना तो होती ही है। यहाँ तक कि वो क़रीबी मित्र भी एक निश्चित दूरी बना लेते हैं जिनका साथ मिलने का पूरा यक़ीन होता है। पारिवारिक दायित्व और घर तो प्राथमिकता सूची में सर्वप्रथम होते ही हैं पर कई बार अस्वस्थता या अन्य कारणों से थोड़ी बहुत मानसिक परेशानियाँ अवश्य आई हैं। लेकिन अब मैं इन सबके साथ जीने, इनसे उबरने या फिर इग्नोर कर देने में अभ्यस्त हो चुकी हूँ। उन लोगों के लिए मैं कोई तनाव क्यों लूँ? जो न मेरे दुःख में कभी साथ खड़े हुए और न ही ख़ुशी में दिल से शामिल हो सके। जबसे अपेक्षा रखनी बंद की, जीवन आसान हो गया है। हाँ, अपनी तरफ से किसी के लिए स्नेह में कोई कमी न आने दी और न ही कोई मलाल रखा है।

प्रीति सुराना:- हर कार्य के लिए अर्थ की व्यवस्था अनिवार्य किन्तु कठिन होती है,..

अपने कार्यों को सुचारू रूप से चलने के लिए क्या कभी ऐसी दिक्कतों से दो चार होना पड़ा?

प्रीति 'अज्ञात:- आर्थिक दिक्कतें तो नहीं कह सकती क्योंकि एक ऑनलाइन पत्रिका चलाने एवं अन्य कार्यों के लिए जो खर्च होता है वो मैं दे पाती हूँ। ये बात जरूर है कि कई प्रिंट पत्रिकाओं का हश्र देख 'हस्ताक्षर' को प्रिंट में लाने का सोचकर रह जाना पड़ता है। पत्रिका निकालने से लेकर पाठकों तक पहुंचाने में काफी खर्च होता है। वार्षिक सदस्यता लोग एहसान की तरह देते हैं। रचनाकारों को पारिश्रमिक भेजना इत्यादि आवश्यक मुद्दे भी इससे जुड़े हैं। विज्ञापन जुटा पाना और बाकी जोड़-तोड़ में जुटने का समय और साहस फ़िलहाल हमारी टीम में किसी के पास नहीं। जब होगा तो अवश्य इस बारे में चर्चा होगी।

प्रीति सुराना:- लेखन का क्षेत्र बहुत सहज सरल नहीं है, आपकी अभिव्यक्तियों को परिवार की क्या प्रतिक्रिया मिलती है ?

प्रीति 'अज्ञात:- स्कूल के दिनों से लिखती और प्रकाशित होती आ रही हूँ लेकिन इसे अपने कार्यक्षेत्र की तरह चुनने का कभी सोचा नहीं था। बस, ऐसा करना सुकून देता था। पेड़-पौधों से बचपन से बतियाती आई हूँ, सेवा-भाव दिली प्रसन्नता देता रहा है। स्केचिंग, पेंटिंग, फोटोग्राफी का भी बहुत शौक़ रहा है। पर उन दिनों ये सब हॉबी में गिना जाता था और भविष्य के लिए तीन ही विकल्प हुआ करते थे। डॉक्टर बनो, इंजीनियर बनो या शादी कर लो। डॉक्टर मैं बन नहीं सकी, इंजीनियर बनने में कोई दिलचस्पी नहीं थी, शादी तो होनी ही थी। खैर, बॉटनी से एम एससी किया और एक साल अध्यापन कार्य भी। टीचिंग में मुझे बहुत मजा आता था। छोटे बच्चों को भी कई वर्षों तक पढ़ाती रही हूँ। शादी के बाद अमेरिका जाना पड़ा और उन दिनों जारी बी एड तथा डिप्लोमा इन पब्लिक रिलेशनशिप कुछ माह से अधूरा रह गया। बस ये लेखन ही था जो कभी भी पूरी तरह से नहीं छूटा। मेरे शौक़ और कार्यों का फैलाव इतना है कि फुल टाइम जॉब नहीं कर सकती। ऐसे में अपनी सुविधा से ऑनलाइन लिखने से बेहतर और कुछ नहीं! दुनिया वाक़ई में गोल है और मैं तमाम मोड़ों से निकलकर वहीँ वापिस आई हूँ, जो हमेशा से तसल्ली और ख़ुशी का कारण बनता रहा है। अपने विषय से अत्यधिक लगाव के कारण तीन वर्षों से बोन्साई क्लास में भी जा रही हूँ और हर बार कुछ नया सीखने की ललक ने मुझे संस्कृत पढ़ने को बाध्य कर दिया। हालाँकि यह स्कूल की पढाई जैसा था, जहाँ प्रेजेंटेशन भी हुए और फाइनल से

पहले तीन एग्जाम भी। पर जब कुछ करना अच्छा लगता है तो समय कभी आड़े नहीं आता!

किसी के भी परिवार के सदस्य हर उस कार्य से हमेशा संतुष्ट रहे हैं जिससे उनकी दिनचर्या पर कोई असर न आए। मेरी प्रथम प्राथमिकता भी वही हैं। उनका सहयोग भी मेरे साथ रहता ही है। राहें तो सभी अपनी स्वयं ही तय करते हैं, कोई अड़चन न दे वही सौभाग्य है।

प्रीति सुराना:- आपके लेखन के विस्तृत संसार सहयोगी परिवार और संबंधियों के अलावा कौन कौन हैं?

प्रीति 'अज्ञात:- जैसा कि मैनें पूर्व में ज़िक्र किया कि पूरी टीम के साथ करीम पठान 'अनमोल' हस्ताक्षर का प्रमुख स्तम्भ हैं। इससे पहले भी एक अन्य पत्रिका में हमने डेढ़ वर्ष साथ काम किया है। हमारी सोच और समझ एक जैसी है और एक-दूसरे पर पूरा भरोसा भी है हमें। वो मेरे छोटे भाई हैं, बहुत प्यारे दोस्त और परिवार के सदस्य जैसे हैं। और हाँ, उनकी उम्दा ग़ज़लकारी की मैं ख़ासी प्रशंसक भी हूँ। मज़ेदार बात ये है कि हम ऑनलाइन ही एक दूसरे से जुड़े हैं।इसके अलावा मेरा जो कार्यक्षेत्र है, वो मैं स्वयं ही संभालती हूँ।

प्रीति सुराना:- भारतीय संस्कृति की सुरक्षा के लिए आपने क्या प्रयास किये या भ्रष्टाचार व्यभिचार जैसे जटिल एवं घातक मुद्दों पर आपके कार्यक्षेत्र का क्या योगदान है?

प्रीति 'अज्ञात:- समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर कर एक सकारात्मक सोच उत्पन्न करने का प्रयास हम सदैव ही करते रहे हैं। हमारी भाषा और मूल्यों का भी बराबर सम्मान होता रहा है। संस्कृति का तो कह नहीं सकते पर मानवीय सोच तो इससे अवश्य ही प्रभावित होती है। यही हमारा उद्देश्य है और नैतिक धर्म भी।

भ्रष्टाचारमुक्त समाज का आह्वान किया जा सकता है, पर ये प्रत्येक नागरिक को स्वयं ही करना है। सरकार या कोई संस्था आपको रिश्वत न लेने-देने के लिए कह सकती है। कचरा सही जगह पर फेंकने के लिए डस्टबिन रखवा सकती है। स्त्री के प्रति सम्मान भाव रखने की बात कह सकती है पर ये करना तो हरेक को खुद ही होगा। सब अपना-अपना घर संभाल लें तो सब कुछ स्वतः ही ठीक हो जाएगा। योजनाएँ बनाना और ख़त्म करना भी पैसे को जाया करना ही है। हर छोटे-बड़े अपराध की सजा तुरंत हो, तो समाज और राष्ट्र दोनों का भला भी उसी गति से

दृष्टिगोचर होने लगेगा। हमें एक अपराधमुक्त, भयमुक्त समाज की स्थापना पर बल देना होगा।

प्रीति सुराना:- मूलतः आप अपने कार्यों का संचालन कैसे और कहां से करती हैं?
प्रीति 'अज्ञात:- 'हस्ताक्षर' का कार्य तो पूर्ण रूप से ऑनलाइन एवं फ़ोन द्वारा ही संचालित होता है। 'सौदामिनी' के लिए कई बार व्यक्तिगत तौर पर मिली भी हूँ।

प्रीति सुराना:- आप अपने पाठकों और समाज को क्या संदेश देना चाहेंगी?
प्रीति 'अज्ञात:- सन्देश तो बस यही कि जितना अच्छा दूसरों के लिए कर सकते हैं, कीजिए, सकारात्मक सोच रखिए क्योंकि लाख बुराइयों के बीच कहीं अच्छा भी होता है यह उम्मीद सबके दिलों में जीने की ललक बनाये रखती है और आशाओं को बिखरने नहीं देती। किसी से ईर्ष्या न रख स्वयं को बेहतर बनाने के प्रयास करें तो आपका मन भी प्रसन्न रहेगा और परिवेश भी!

इन सारी औपचारिक बातों के साथ परिचर्चा को विराम देते हुए यही कहूंगी की तुम यूँही हँसती मुस्कुराती लक्ष्य की ओर आगे बढ़ती रहो।
अंतरा- शब्दशक्ति परिवार की ओर से आपके उज्ज्वल भविष्य के लिए ढेर सारी शुभकामनाएं।

अपनी व्यस्तता में से कुछ अमूल्य पल इस साक्षात्कार के लिए निकाले, उसके लिए बहुत बहुत आभार।

मिलते रहेंगे इस वादे के साथ नमस्कार।

प्रीति समकित सुराना

पुस्तक समीक्षा
चौपड़े की चुड़ैलें

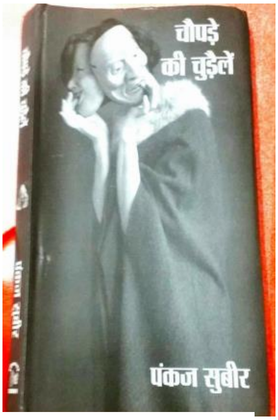

पुस्तक समीक्षा : मुकेश दुबे (कहानी-संग्रह : पंकज सुबीर)

कहानी मात्र साहित्य की विधा भर नहीं है। यह कहन की कला है। हुनर है और ऐसा जादू है जिसमें पाठक श्रोता बन जाता है।

शब्द आँखों के रास्ते कानों में गूँजते हैं और कथा रस की फुहार भिगाने लगती है मन के सूखे कोने को जो वीरान पड़ा है दादी - नानी के बाद उस आँगन सा जिसे लेपा नहीं गया है।

पीली मिट्टी में मिले गोबर की महक और किनारों पर चूने की बेल, मांडने... जगमगा उठता है वह अंधेरा कोना कहानी सुनकर.... मगर, उसके लिए कहानी कहने वाला भी कोई जादूगर चाहिए कलम का।

'पंकज सुबीर' साहित्य जगत में खासतौर पर किस्सागोई में जाना पहचाना नाम है।आपकी लेखन की विशिष्ट शैली कथाओं को दूसरे कथाकार से अलग करती है और यही सुबीरीयन फ्लेवर आपकी कथाओं के पात्रों को जीवंत कर जाता है।

बहुत मुश्किल है आपकी रचना को शुरू करने के बाद बीच में या अधूरा छोड़ना।

ताश की बाजी में हारते खिलाड़ी सी मनोदशा बन जाती है। बस एक पृष्ठ फिर उठ जाऊँगा... यह कथा बिल्कुल आखिरी होगी गंगा मैया की कसम... मगर किताब पूरी किये बिना रुक पाना नामुमकिन है।

हाल में प्रकाशित यह संग्रह कुछ दिनों पहले मिला था मगर त्यौहार व कार्यालयीन व्यस्तताओं के चलते आज सुबह उठाया।

उठाया मतलब वही बात जो गाँव में कहते हैं। भुनते हुए हरे चने देखकर ललचाना

नहीं, वहाँ रुकना नहीं और रुक गये तो एक दाना उठाकर खाना नहीं। खा लिया तो फिर.......

पहली कथा "जनाब सलीम लँगड़े और श्रीमती शीला देवी की जवानी" ही फिल्लम के ट्रेलर सी बांध लेती है।

फिल्म से याद आया वर्ष 1989 में एक फिल्म आई थी 'सलीम लँगड़े पे मत रो'। जनाब सईद अख्तर मिर्जा ने मंझे हुए कलाकार पवन मल्होत्रा को इस फिल्म में सलीम लँगड़े के किरदार में इस तरह पेश किया था कि लगता था सलीम मियाँ पैदाइशी नुक्स यानि मैन्यूफैक्चरिंग डिफेक्ट के साथ आये थे।

पंकज जी ने भी अपनी लेखनी से जिस सलीम को गढ़ा है, उसके अत्तर-ए-हिना की ख़ुशबू और पाँव की लचक महसूस होने लगते हैं।

श्रीमती शीला देवी की जवानी का चर्चा या कहिये उनकी जवानी का साहित्यिक वर्णन और सलीम मियाँ के साथ हुए रावले की तो बात ही निराली है।

एक परम्परा का जिक्र है, मजहबी फितूर है और दैहिक जरूरतों की तथ्यात्मक नजीर है कहानी।

दूसरी कथा है 'अप्रेल की एक उदास रात'। यह कथा मानवीय प्रेम और मौसम के बीच की अनदेखी कड़ी का खूबसूरती से बखान करती है। एक साथ कई किस्से गुथ गये हैं किसी पहाड़ी सर्पिल रास्ते से जुड़ती पगडंडियों की तरह।

अतीत की यादों को आने वाले कल से जोड़ती शानदार कथा है यह भी।

'सुबह अब होती है.... ' स्त्री के मनोविज्ञान के साथ पुरुष की खब्त और आवश्यकता से अधिक व्यवस्थित होने की भावपूर्ण कहानी है। युवा अधिकारी और प्रमोटी वरिष्ठ की कार्यशैली को भी सहजता से विभेदित किया है लेखक ने।

'इन दिनों मैं पाकिस्तान में रहता हूँ' गंगो जमुनी तहजीब की महक बिखेरती बेहतरीन कहानी है। हिन्दू-मुसलमान के दरमियाँ आये फासलों को बड़ी नफासत से दिखलाया है पंकज जी ने। भासा के कहने में // तुम कह सकते हो कि मैं इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ // छलका दर्द राहुल के साथ पाठक की छाती को भी चीर जाता है।

"रेपिश्क़" नये जमाने के चलन और तालीम याफ्ता आधुनिक युवाओं की सोच का आईना है। लिवइन रिलेशनशिप की सीमाओं और इश्क़ में हर हद तोड़ने की अजीबोगरीब दास्तां है यह कहानी। अपने अंत के साथ कई सवाल छोड़ जाती है पाठक के जहन में। यह सफलता है लेखकीय कौशल की।

'धकीकभोमेग' भी आजकल की बाबा प्रथा का कच्चा चिट्ठा लिए आँखें

खोलती कथा है। चोर पर मोर स्टाइल में दो ठग जब ठगी बाबा को ठगते हैं तब बाबा की दशा साँप-छछूँदर सी रह जाती है। शीर्षक शब्द का विस्तार पढ़कर चौंक जायेगा हर पाठक।

'औरतों की दुनियाँ' आज के छल व फरेब की धुंध को छांटती बहुत सुन्दर रचना है। सम्पत्ति के लिए रिश्ते टूटते देखे हैं अक्सर हमने। इस कहानी में औरतों की सोच टूटते रिश्तों को नया जीवन दे गई है। बहुत सम्वेदनशील मुद्दे को सहजता से हल किया है पंकज जी ने।

'चाबी' बंद ताले को खोलने की युक्ति है यह प्रमाणित कर दिया है इस कहानी में।पूरे घटनाक्रम में कहीं महसूस नहीं होता असलियत क्या है। पाठक किसी नाजायज रिश्ते की कल्पना करता रहता है किन्तु असलियत आँखें भिगा जाती है।

शीर्षक कहानी "चौपड़े की चुड़ैलें" राजेन्द्र यादव हंस कथा सम्मान प्राप्त कहानी है मतलब कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है। और हाँ यह चुड़ैलें भी बड़ी करामाती हैं। अभी तक भूत-चुड़ैल की याद आती थी तब "जय हनुमान ज्ञान गुण सागर" जपने लगते थे। अब चौपड़े तक जाने की लालसा जागेगी।

कुल मिलाकर यह संग्रह पंकज सुबीर जी की लेखनी का उत्कृष्ट नमूना है। नये लेखकों के लिए संदर्भ ग्रंथ कह सकते हैं जिसे पढ़कर इस विधा की बारीकियों को समझा जा सकता है।

हार्दिक बधाई भाई पंकज जी व शिवना प्रकाशन, सीहोर को।

मुकेश दुबे, सीहोर

~||अंतरा-शब्दशक्ति||~
मासिक वेब पत्रिका
अंक 1
जुलाई 2017
प्रवेशांक
~|| अंतरा-शब्दशक्ति ||~
मासिक वेब पत्रिका
अंक २
अगस्त २०१७
पावस विशेषांक
~|| अंतरा-शब्दशक्ति ||~
मासिक वेब पत्रिका
अंक 3
सितंबर 2017
~|| अंतरा-शब्दशक्ति ||~
मासिक वेब पत्रिका
अंक 4
अक्टूबर 2017
दीपावली विशेषांक
~||अंतरा–शब्दशक्ति||~
www.AntraShabdshakti.com
https://www.facebook.com/antrashabdshakti/
antrashabdshakti@gmail.com